੧ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

काव्य–सौरभ

महाकवि संतोख सिंह

भूमिका लेखक

एवं

सम्पादक

डॉः जयभगवान गोयल

पूर्व प्रोफैसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

एवं

पूर्व अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड

प्रकाशकः

धर्म प्रचार कमेटी, (श्रोमणी गुः प्रः कमेटी),

अमृतसर ।

काव्य-सौरभ
महाकवि संतोख सिंह

भूमिका लेखक

एवं

सम्पादक

डॉ: जयभगवान गोयल

पूर्व प्रोफैसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

एवं

पूर्व अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड

प्रकाशकः

धर्म प्रचार कमेटी

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी,

अमृतसर।

क्रम

भूमिका १–३१

काव्य–पाठ

१. मंगला चरण ३२–४४

इष्टदेव, गुरु नानक देव, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव,
गुरु हरगोबिंद, गुरु हरिकृष्ण, गुरु तेगबहादर, गुरु गोबिंद सिंह;
गुरु सिक्ख, ब्रह्म का दिव्य सगुण रूप, शिव–वर्णन,
गुरु–महिमा, चण्डी;
विनय पद
'गुरु प्रताप सूरज'–ग्रंथ रूपक

२. आध्यात्मिक विचार ४४–५३

ब्रहम, जगत, माया, जीव,
ज्ञान, विराग, योगस भार, नाम–महिमा,
सत्संगति, संत–सेवा, परोपकार,
जाति–पाति, गुरु गुरुवाणी महिमा,
सिक्खी के आदर्श गुरु, काशीराज की गुरु–महिमा,
गुरुजी की दिग्विजय;

३. गुरु नानक का शिशुरूप, वात्सल्य–वर्णन– ५४

गुरु हरगोबिंद, गुरु गोबिंद सिंह की बाल–क्रीडा,
हस्तपुर की स्त्रियों का रूप चित्रण, जैमल की कन्या का युद्ध –वर्णन
उपवन वर्णन; ऋतु वर्णन–ग्रीष्म, वसंत, पावस;
वन–वर्णन; प्रभातु, नदी,
आखेट –वर्णन ६६
नगर–वर्णन ६७
होली–वर्णन ६७
नृत्य–वर्णन ७०
सूत्तियां ।

भूमिका

भाई सन्तोख सिंह की गणना हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जा सकती है और उनका 'गुरु प्रताप सूरज' ग्रन्थ हिन्दी के प्रतिष्ठित महाकाव्यों में स्थान पाने का अधिकारी है । लेकिन, हिन्दी जगत में न तो इस ग्रन्थ की अभी तक समुचित चर्चा हुई है और न ही इसे वह स्थान मिल पाया है, जिसका यह अधिकारी है । वस्तुतः, यह ग्रन्थ हिन्दी के विद्वानों के समक्ष पहले आ ही नहीं पाया । कारण यह था कि यह ग्रन्थ गुरमुखी लिपि में उपलब्ध था और हिन्दी के विद्वान् इस लिपि से अनभिज्ञ थे ।

'गुरु नानक प्रकाश' दो खण्डों में तथा 'गुरु प्रताप सूरज' आठ खण्डों में प्रकाशित हो चुका है । मुझे ज्ञात हुआ है कि 'बाल्मीकि रामायण भाषा' का सम्पादन कार्य भी सम्पन्न हो गया है और यह ग्रन्थ भी शीघ्र प्रकाशित हो जायेगा ।

मुझे विश्वास है कि इन ग्रन्थों को पढ़ कर हिन्दी के विद्वानों को इस काल के सम्बन्ध में अपनी पुरानी मान्यताओं को बदलने के लिये बाध्य होना पड़ेगा ।

'गुरु प्रताप सूरज' एक बहुत बड़े आकार की रचना है । मेरा अनुमान है कि भारतीय साहित्य में 'महाभारत' को छोड़ कर कोई भी दूसरा ग्रन्थ' आकार की दृष्टि से इसके समकक्ष नहीं है । 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' को मिलाकर लगभग 60,000 छन्दों का यह वृहदाकार काव्य हिन्दी साहित्य में अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है ।

'महाभारत' के सम्बन्ध में कहा गया है कि "यह पुराण, इतिहास, महाकाव्य अथवा धर्म ग्रन्थ आदि में से कोई एक नहीं है वरन्, सब कुछ मिलाकर एक महाग्रन्थ है[१]" ।

इसी उक्ति को 'गुरु प्रताप सूरज' के सम्बन्ध में भी दोहराया जा सकता है 'गुरु प्रताप सूरज' भी एक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य एवं धर्म

१—वाचस्पति गैरोला—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. २३७

ग्रन्थ आदि में से कोई एक नहीं है, इसे भी एक 'महा ग्रंथ' की संज्ञा दी जा सकती है । सिक्ख–इतिहास, धर्म तथा दर्शन का तो इसे विश्वकोश माना ही जाता है, इसमें भारतीय धर्म, दर्शन, समाज एवं संस्कृति का भी विशदता से चित्रण हुआ है । भाव–बोध, विषय–वस्तु, आध्यात्मिक–तत्त्व, काव्य–प्रवृत्तियों, काव्य–शिल्प, भाषा शैली एवं छन्द प्रयोग आदि की दृष्टि से भी इसमें इतनी व्यापकता एवं विशालता है कि इसके एक–एक पक्ष को लेकर स्वतन्त्रशोध–ग्रंथ लिखे जा सकते हैं ।

इससे पूर्व कि मैं 'गुरु प्रताप सूरज' ग्रन्थ की चर्चा करूँ, इस काव्य–ग्रन्थ के रचियता भाई सन्तोख सिंह के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी देना अत्यावश्यक है, क्योंकि, कवि के जीवन की घटनाओं, अनुभूतियों, मान्यताओं एवं परिवेश का उसके सृजन से सीधा और गहरा सम्बन्ध होता है । भाई सन्तोख सिंह के पिता का नाम देवा सिंह था तथा माता का रजादी अथवा राजदेवी । वे जाति के छिप्पे थे और उनका गोत्र था करीर । उनका परिवार नूरदी, ज़िला अमृतसर का रहने वाला था । उनका जन्म भी यहीं हुआ था या बूड़िया में, यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता, वैसे सम्भावना अधिक यही है कि उनका जन्म बूडिया में ही हुआ था । उनकी जन्म तिथि भी निश्चित नहीं है । विभिन्न तथ्यों के आधार पर अनुमानतः उनका जन्म संवत् 1844 वि. की 7 आश्विन को हुआ था ।

भाई सन्तोख सिंह के पिता विद्वान् व्यक्ति थे, 'गुरवाणी' में उनकी दृढ़ आस्था थी और निर्मले साधुओं से भी उनका काफी सम्पर्क था । इसलिये उन्होंने इनकी शिक्षा का प्रबन्ध उस युग के प्रख्यात मनीषी, अमृतसर निवासी भाई संत सिंह के पास किया । संत सिंह संत स्वभाव के, भगवद्–भक्ति में लीन रहने वाले, व्यास के समान विद्वान् तथा 'गुरुवाणी' के प्रख्यात पण्डित थे । भारतीय निगम आगम का भी उन्हें विशद् ज्ञान प्राप्त था और उन्होंने 'रामचरित मानस' का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद भी किया था । उनके आश्रय में सन्तोख सिंह ने संस्कृत, हिन्दी एवं पंजाबी भाषा; भारतीय काव्य–शास्त्र;

वेदान्त, संस्कृत साहित्य एवं 'गुरुवाणी' आदि का गम्भीर अध्ययन किया। भाई सन्तोख सिंह की प्रतिभा को विकसित करने में उनके तेजस्वी गुरु ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

लगभग 15 वर्षों तक उनके पास विद्याध्ययन करने के पश्चात् वे बूड़िया (अम्बाला ज़िले में) चले गये। वहां वे स्वतन्त्र रूप से काव्य-रचना करने लगे। लगभग संवत् 1870 से 1880 तक वे वहीं रहे। यहीं उन्होंने 'नामकोश' तथा 'गुरु नानक प्रकाश' की रचना की। अब वे सभी गुरुओं के जीवन पर एक काव्य-ग्रंथ लिखना चाहते थे। उसके लिये ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित करने के लिये उन्होंने करतारपुर, ख्याला, बारने, हड़याया, बणी बदरपुर, मुकंदपुर, रानीका रायपुर, चिहका, ठसका आदि स्थानों का भ्रमण किया। कुछ समय के लिये पटियाला में भी रहे। 1884 वि. में उनकी प्रसिद्धि सुन कर कैथल नरेश भाई उदय सिंह ने उन्हें अपने पास बुला लिया और फिर जीवन के अन्तिम दिनों तक वे वहीं रहे।

कैथल नरेश महाराजा उदयसिंह के आश्रय में उन्होंने 'गरब गंजनी', 'बाल्मीकि रामायण भाषा', 'गुरूप्रताप सूरज' आदि रचनाओं का प्रणयन किया। इन रचनाओं में उन्होंने भाई उदयसिंह के वंश, उनके जीवन की मुख्य घटनाओं तथा उनकी दानशीलता एवं वीरता की प्रशंसा की है। किन्तु, अपने आश्रयदाता की जो प्रशंसा इन्होंने की वह हिन्दी के रीतिकालीन उन कवियों से सर्वथा भिन्न है जो धन-प्राप्ति के लोभ से अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा में ग्रंथ के ग्रंथ लिख डालते थे। इन्होंने उनकी प्रशंसा में किसी स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना नहीं की। यदि उनकी दानशीलता, उदारता, धर्मपरायणता और विद्वत्ता की प्रशंसा की भी है तो उसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है।

भाई सन्तोख सिंह बहुश्रुत, बहुज्ञ एवं बहुदर्शी विद्वान् थे। उन्होंने काव्य के अतिरिक्त दर्शन, ज्योतिष, राजनीति शास्त्र, शस्त्र विद्या, युद्ध विद्या, घुड़सवार विद्या, वैद्यक, संगीत आदि विषयों में भी अपनी लेखनी का

चमत्कार दिखाया है । उनका अध्ययन बड़ा गम्भीर और विशद था । उन्होंने अपने काव्य ग्रन्थों में 'महाभारत', 'रामायण', 'पुराणों' आदि के अनेक उद्धरण दिए हैं । हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध कवियों की छाप भी इनके काव्य में स्पष्ट लक्षित होती है । सिख तथा मुगल इतिहास का भी उन्हें विशद ज्ञान था । उसी के आधार पर इन्होंने 'नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' की रचना की । वेदान्त पर इतना अधिकार था कि भक्ति, कर्म, योग, ज्ञान आदि का सविस्तार विवेचन किया और 'गुरु ग्रंथ साहब', 'दशम ग्रंथ' तथा भाई गुरुदास की वाणी की साक्षी देते हुए सिक्खमत के दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया । पिंगलशास्त्र तथा अलंकार शास्त्र पर इनका अधिकार इनके काव्य में कहीं भी देखा जा सकता है । वे संस्कृत, हिन्दी तथा पंजाबी के तो प्रकाण्ड पण्डित थे ही, इसके अतिरिक्त अरबी, फारसी, पंजाबी, पहाड़ी, लेंहदा आदि भाषाओं का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था । 'आत्म पुराण', 'बाल्मीकि रामायण' तथा 'अमरकोश' का हिन्दी अनुवाद उनके संस्कृत ज्ञान का परिचायक है । विद्वत्ता के साथ ही उनमें सूक्ष्म निरीक्षण तथा अनुसंधान की प्रवृत्ति भी विद्यमान थी । तभी वे अनेक स्थानों पर बिखरे सिक्ख गुरुओं के इतिहास को श्रृंखलाबद्ध कर सके ।

गृहस्थी होते हुए भी सन्तोखसिंह संत स्वभाव के, उदार, समदर्शी, त्यागी तथा परोपकारी व्यक्ति थे । उन्होंने कथाकार के चौदह गुणों का वर्णन करते हुए उसके लिये सन्तोषी होना भी आवश्यक बताया है । वे स्वयं कथा किया करते थे और जो कुछ मिल जाता उसी में सन्तुष्ट रहते थे । बूड़िया तथा पटियाला निवास के समय उन्हें आर्थिक अभाव सताते रहते थे, परन्तु दरिद्रता की मार उन्हें अपने रास्ते से विचलित नहीं कर सकी । कैथल में रहते हुए जब उनकी पर्याप्त आय थी, उस समय भी वे परोपकार के कार्य करते रहते थे । उनके घर पर सम्बन्धियों तथा संत–महात्माओं का जमघट लगा रहता था, जिनकी वे मन खोलकर सेवा करते थे । वस्तुतः, भाई सन्तोख सिंह एक ऐसे महाकवि थे जो यश अथवा धन आदि के लिये नहीं, वरन्

आत्मसुख तथा जन हित के लिये काव्य रचना करते थे। वे प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् कलाकार थे और उनका व्यक्तित्व बड़ा तेजस्वी और प्रभावशाली था। प्रायः भारतीय महाकवि आत्मा में परमात्मा के दर्शन करने वाले महामानव के लक्षणों से विभूषित रहे हैं। 'बाल्मीकि' तथा 'व्यास' से लेकर तुलसीदास तथा सूरदास तक इस प्रकार के महाकवियों की जो एक परम्परा चली आई है, भाई सन्तोख सिंह उसी माला के एक मोती हैं।

भाई सन्तोखसिंह की पांच रचनायें उपलब्ध हैं :-

१. नाम कोश २. गुरू नानक प्रकाश ३. गरब गंजनी (जपुजी टीका) ४. बाल्मीकि रामायण भाषा तथा ५. गुरु प्रताप सूरज।

'नाम कोश' संस्कृत के 'अमरकोश' (अमर सिंह) का अनुवाद है। यह सन्तोख सिंह की पहली रचना है। इसका बूड़िया में आरम्भ हुआ और संवत् 1878 में इसे अमृतसर में समाप्त किया गया। 'गुरु नानक प्रकाश' सन्तोख सिंह की प्रथम महत्वपूर्ण काव्य कृति है। गुरु नानक के जीवन पर आधारित 9,700 छन्दों का यह एक उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य है, जिसकी रचना कवि ने बूड़िया निवास के समय 1880 वि. में की। इस में कथा के माध्यम से गुरु नानक के आध्यात्मिक, सामाजिक एवं नैतिक सिद्धान्तों एवं आदर्शों का विशद विवेचन किया गया है। विविध भावों एवं मनोवेगों की भी इसमें सजीव एवं मार्मिक व्यंजना हुई है। इस का मुख्य रस शान्त है। काव्यकत्व की दृष्टि से भी यह एक उत्कृष्ट रचना है। संवत् 1886 में कैथल-नरेश भाई उदयसिंह के अनुरोध पर भाई सन्तोख सिंह ने 'जपुजी' की एक विद्वत्तापूर्ण टीका की, जिसे उन्होंने 'गरब गंजनी' नाम दिया। यह 'जपुजी' की संस्कृत की भाष्य-शैली में रचित एक महत्वपूर्ण टीका है। इसमें 'नानक वाणी' की व्याख्या वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में की गई है। यह एक 'रीति रचना' भी है, जिसमें कवि के प्रौढ़ आचार्यत्व के दर्शन होते हैं। इसमें अलंकारों, गुण दोष, शब्द शक्ति, भाषा आदि की दृष्टि से 'जपुजी' के काव्यत्व की परीक्षा भी की गई है। इस दृष्टि से मैं इसे हिन्दी की पहली आलोचनात्मक

पुस्तक मानता हूँ, जिसमें शास्त्रीय आधार पर एक काव्यकृति की व्याख्यात्मक आलोचना की गई है । 'गरब गंजनी' की रचना के कुछ समय पश्चात् अपने आश्रयदाता के अनुरोध पर उन्होंने संवत् 1891 में 'बाल्मीकि रामायण' का बहुत ही मधुर एवं सरस ब्रजभाषा में पद्यानुवाद किया । इस अनुवाद में पात्रों का चरित्र–चित्रण, कथा का स्वरुप, भावों की व्यंजना एवं वस्तुवर्णन 'बाल्मीकि रामायण' के ही अनुरूप है । भावों में वैसी ही मार्मिकता, चित्रण में वैसी ही सजीवता एवं शैली में वैसी ही सरसता है । 'बाल्मीकि रामायण' का ऐसा सुन्दर और सरस पद्यानुवाद अन्यत्र दुर्लभ है ।

'गुरु प्रताप सूरज' भाई सन्तोख सिंह की अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट रचना है । इस ग्रन्थ का आरम्भ कैथल में संवत् 1893 में हुआ और वहीं संवत् 1900 में यह पूर्ण हुआ । यह एक वृहदाकार की रचना है । इसमें 20 अध्याय, 1151 अंशु तथा 51829 छन्द हैं । सम्पूर्ण कथानक सूर्य की गति के आधार पर 12 राशियां, 6 ऋतुओं एवं 2 अयनों में विभक्त है । वे पुनः सूर्य की किरणों के आधार पर अंशुओं में विभाजित किए गए हैं । रचना के नामकरण तथा उसके रचना–विधान में एक सुन्दर रूपक की कल्पना की गई है । कवि के अनुसार सिक्ख गुरुओं के प्रताप एवं ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों, धार्मिक संकीर्णता, भ्रम, पाखंड, अज्ञान, असत्य, अन्याय एवं अत्याचार आदि के अन्धकार को विदीर्ण करने वाली हैं । उनसे सज्जन रुपी कमल–वृन्द विकसित हो उठते हैं और जिज्ञासी भौंरे मंडराते हैं । गुरूओं को अविधा भ्रम आदि के अन्धकार को विनिष्ट करने वाले सूर्य के समान कहने की प्रेरणा उन्हें भाई गुरुदास से मिली प्रतीत होती है । भाई गुरु दास ने गुरु महिमा का वर्णन इस प्रकार किया थाः

"सतिगुर नानक प्रगटिया मिटी धुंध जग चानन होईआ ।"

संस्कृत में महाकाव्यों को 'सर्गों में तथा प्राकृत एवं अपभ्रंश में 'आश्वास', 'परिच्छेद' आदि में विभक्त करने की परम्परा थी । हिन्दी में समय (पृथ्वीराज रासो) कांड (रामचरित मानस) तथा खण्ड (पद्मावत)

आदि का भी प्रयोग किया गया है । भाई सन्तोख सिंह ने इनके स्थान पर 'राशि', 'ऋतु', एवं 'ऐन' का प्रयोग किया है । जिस प्रकार संस्कृत काव्यों में सन्धियों का प्रयोग होता था, उसी प्रकार उन्होंने 'अंशु' का प्रयोग किया है । तथापि, यहां इतना द्रष्टव्य है कि इनके नामकरण एवं अध्यायों के विभाजन में जिस प्रकार के सुन्दर रूपक की योजना की गई है, वह संस्कृत के सर्ग–बद्ध काव्यों अथवा अपभ्रंश के कड़वक बद्ध काव्यों में दिखाई नहीं पड़ती । संस्कृत में कुछ ऐसे कथा–काव्य अवश्य हैं, जिनके नामकरण के साथ उनके अध्यायों के नाम में कुछ सीमा तक रूपक का निर्वाह हुआ है। 'कथासरित सागर' (सोमदेव) में अनेक कथाएं हैं, जिन्हें 'लम्बकों' में तथा फिर उन्हें 'तरंगों' में विभक्त किया गया है । 'राजतरंगिणी' (कल्हण) में अध्यायों को 'तरंगों' में ही विभाजित किया गया है । यहां भी 'तरंगिनी' और 'तरंग' में संगति है । 'हर्ष चरितम्' (बाण भट्ट) में अध्यायों को 'उच्छवास' कहा गया है, जो 'चरित' (जीवन) के अंग ही हैं । जहां तक कथा के रूपक का सम्बन्ध है, स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' में रामकथा का 'सरिता' के (1/2) तथा गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में 'सरोवर' (बाल कांड 37) के रूप में वर्णन किया है । इससे स्पष्ट है कि 'गुरूप्रताप सूरज' के नामकरण, अध्यायों आदि के विभाजन तथा कथानक की रूपक–योजन करते समय उपर्युक्त सभी ग्रन्थ भाई सन्तोख सिंह के सामने रहें होंगे । किन्तु, उनकी रूपक योजना उन सभी से अधिक सर्वांगीण, रमणीय तथा सार्थक है । युग–परिवेश के साथ उसका सम्बन्ध उसकी एक अन्यतम विशिष्टता है । कवि ने गुरुकथा को गंगा के समान पवित्र बताते हुए भी एक सुन्दर रूपक की योजना की है[१]।

'गुरु प्रताप सूरज' धार्मिक भावना से अनुप्राणित एक कथा–प्रधान चरित काव्य है । अपभ्रंश में जैन कवियों ने अनेक ऐसे काव्यों की रचना की थी, जिनमें किसी महापुरुष के चरित्र को अंकित किया था और उसके

१. 'गुरु प्रताप सूरज' ऐन (२/३६/२२–४५) ।

माध्य 7 से जैन मत के धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण भी किया गया था। इनके अतिरिक्त 'रासो', 'रासक', 'रूपक', 'प्रकाश' एवं 'विलास' आदि नामों से और भी अ क चरित काव्य लिखे गये। हिन्दी में 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'रामचरित मानस' ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाया है। इनमें से कुछ रचनाएं ऐसी हैं, जिनका उद्देश्य किसी विशिष्ट धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण करना भी है। 'गुरु प्रताप सूरज' इसी तरह की रचना है। इसमें गुरु नानक तथा अन्य नौ गुरुओं का चरित्र अत्यन्त विस्तार से वर्णित है। अन्त में बन्दा बैरागी के जीवन–चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। (गुरु नानक का चरित्र यहां संक्षेप में है 'गुरु नानक प्रकाश' में विस्तार से)। साथ ही गुरुओं के धार्मिक एवं सामाजिक विचारों का प्रतिपादन भी उसमें विशदता से किया गया है।

कथा–प्रधान काव्य धर्म प्रचार का अत्यन्त सशक्त, सरल एवं सरस साधन है। जातक कथाओं एवं पौराणिक कथाओं के माध्यम से धर्म प्रचार को जो सफलता प्राप्त हुई, वह इसका ज्वलंत प्रमाण है। जैन कवियों ने अपने धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन का मुख्य साधन कथा–काव्यों को ही बनाया था। रामभक्ति के प्रचार का भी अधिक श्रेय 'रामचरित मानस' को ही है। पंजाब के कवियों ने भी सिक्ख मत के प्रचार एवं प्रसार के लिये कथा–काव्यों का आश्रय लिया। 'गुरुशोभा' (सेनापति), 'महिमा प्रकाश' (सरूपदास भल्ला), 'गुरु विलास' (सुक्खा सिंह), 'गुरु विलास' (कुइर सिंह), 'गुरु नानक विजय' (संतेरण), 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' (संतोख सिंह) ऐसे ही काव्य ग्रंथ हैं। इनमें गुरुओं के जीवन की कथा का निरूपण हुआ है और उनके माध्यम से 'गुरमत' का प्रचार करने का सफल प्रयास किया गया है।

'गुरु प्रताप सूरज' शास्त्रीय पद्धति पर रचित महाकाव्य है। 'महाकाव्य' के लक्षण देते हुए संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने जहां उसकी 'सर्गबद्धता' का उल्लेख किया है, वहां उसके आरम्भ में 'मंगलाचरण' का

भी विधान किया है । यह मंगलाचरण आशीर्वाद, नमस्कार एवं कथा–वस्तु के निर्देश से सम्बन्धित हो सकते हैं । संस्कृत के महाकाव्यों का आरम्भ मंगलाचरण से ही होता है । हिन्दी में तुलसीदास जैसे महाकवियों ने भी अपने महाकाव्य का आरम्भ मंगलाचरण से ही किया है । 'गुरु प्रताप सूरज' के भी 44 छन्दों में क्रमशः अकालपुरुष, कवि संकेत मर्यादा, गुरु नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन देव, हरिगोबिन्द, हरिराई, हरिकृष्ण, तेग बहादुर, गोबिन्द सिंह, गणपति, ब्रह्मा, सुरगुरु, बाल्मीकि, वशिष्ट, इन्द्र, अगस्त्य, व्यास, युधिष्ठिर, अर्जुन, रामचन्द्र, नरसिंह, घनश्याम, वामन, दशरथ, जनक, गोरख, कबीर, बाबा बुड्ढा, सूर्य, चन्द्र, नारद, शारदा, शेष, हनुमान, खालसा, गुरुकथा–महिमा आदि से सम्बन्धित मंगलाचरण हैं । इनमें आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक एवं कथा निर्देशात्मक सभी प्रकार के मंगलाचरण हैं । प्रत्येक कवि अपनी धार्मिक भावना के अनुरूप ही अपने इष्ट देव की वंदना सम्बन्धी मंगलाचरण देता है । तुलसीदास ने जहां श्री रामचरित तथा राम कथा की महिमा सम्बन्धी मंगलाचरण दिये हैं, वहां भाई सन्तोख सिंह ने अकाल पुरुष, सिक्ख गुरुओं तथा उनकी चरित्र–कथा की महिमा के मंगलाचरण को प्राथमिकता दी है । किन्तु, अन्य देवताओं, ऋषियों, मुनियों, संतों, भक्तों आदि की वंदना सम्बन्धी मंगलाचरण से उनकी उदार धार्मिक दृष्टि का ही बोध होता है । मंगलाचरण सम्बन्धी इन छन्दों से उनकी भक्ति भावना, दार्शनिक विचार, अवतारवादी भावना में विश्वास, सिक्ख गुरुओं तथा खालसा के प्रति निष्ठा के साथ ही पौराणिक पुरुषों के प्रति श्रद्धा एवं उन पर वैष्णव प्रभाव का भी परिचय मिल जाता है । इन मंगलाचरणों के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि उनमें कई छंद अलंकृत शैली में लिखे गए हैं । इनमें कवि ने श्लेष, यमक एवं अन्त्यानुप्रासों के अनेक रूपों का प्रयोग किया है ।

'गुरु प्रताप सूरज' से पूर्व कोई भी एक ऐसा काव्य–ग्रंथ नहीं है, जिसमें सभी सिक्ख गुरुओं की कथा विस्तार से वर्णित हो । 'दशम ग्रंथ', 'गुरु

शोभा', 'गुरु विलास', 'महिमा प्रकाश' तथा 'जन्म साखियां' में कुछ इतिवृत्त अवश्य आया है । भाई सन्तोख सिंह ने अपने ग्रंथ के लिए इन सभी पूर्ववर्ती रचनाओं से सामग्री प्राप्त की है । उन्होंने आरम्भ में भाई रामकुइर द्वारा सिक्खों को गुरुओं का इतिवृत्त सुनाने का उल्लेख किया है जिसे साहब सिंह नाम के किसी सिक्ख ने लिपिबद्ध किया था, किन्तु उनका संकेत किस रचना से है, यह स्पष्ट नहीं है । उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट निर्देश किया है कि उन्होंने अनेक स्थानों पर जाकर गुरुओं के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र की है । जन-श्रुतियों का भी उपयोग किया गया है । इस सम्पूर्ण सामग्री को क्रमबद्ध, संगठित एवं सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने एक ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया है । परवर्ती इतिहासकारों ने उससे पर्याप्त लाभ उठाया है ।

'गुरु प्रताप सूरज' एक कथा -विस्तार वाला प्रबन्ध काव्य है । इसमें भाई रामकुइर एवं गुरु नानक अवतार की संक्षिप्त कथा के पश्चात् अन्य नौ गुरुओं तथा बंदा बहादुर की जीवन यात्रा का वर्णन विस्तार से किया गया है । यद्यपि कवि ने सभी गुरुओं का पूर्ण जीवनवृत्त दिया है तथापि गुरु हरिगोबिन्द तथा गुरु गोबिन्द सिंह की चरित्र-गाथा को सर्वाधिक विस्तार दिया गया है, जो स्वाभाविक भी है और उचित भी, क्योंकि इन गुरुओं ने सिक्ख मत को नई दिशाएं दी हैं और उन्हें नई सम्भावनाओं की ओर अभिमुख किया है । कवि ने उनके पठानों एवं मुगलों आदि के साथ युद्धों का भी विशद वर्णन किया है ।

'गुरु प्रताप सूरज' एक सफल प्रबन्ध काव्य है । कथानक में सम्बद्धता, सन्तुलन, प्रवाह एवं रोचकता बनाए रखने के लिये कवि ने कुशलता से काम लिया है । मुख्य कथा गुरुओं के चरित्र से ही सम्बन्धित है, जिसे उनके चरित्र एवं महत्त्व के अनुपात से ही विस्तार दिया गया है । मुख्य कथानक के बीच में अनेक प्रासंगिक कथाएं भी हैं । इनमें मुख्यतः तीन तरह के प्रसंग हैं:-

1. ऐतिहासिक प्रसंग:- इस प्रकार की सभी कथाओं का गुरुओं से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य है और उनसे गुरुओं के कार्यों

का औचित्य सिद्ध होता है अथवा उनके चरित्र की महत्ता की स्थापना की गई है ।

2. पौराणिक प्रसंगः– ये सभी प्रसंग मुख्य कथानक के साथ अनुस्यूत हैं । इनसे गुरुओं के महत्त्व की स्थापना होती है, किसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण होता है और कवि की समन्वय–भावना का भी परिचय मिलता है । इनसे कथानक में गरिमा आ गई है और वे एक विशिष्ट प्रकार का सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न करते हैं ।

3. तीसरे प्रकार की ऐसी कथाएं हैं, जिन्हें अर्ध–ऐतिहासिक प्रसंग कहा जा सकता है । गुरुओं के पास और भी अनेक स्थानों से व्यक्ति आते हैं, जिन्हें गुरु जी नैतिक, धार्मिक, सामाजिक अथवा आचरण–सम्बन्धी उपदेश देते हैं । सिद्ध, शाक्त, नाथ, सूफी, वैष्णव तथा अन्य अनेक मतों के अनुयायी पात्रों का भी गुरुओं से सम्पर्क होता है । उनसे आध्यात्मिक या सामाजिक विषयों पर गुरुओं की चर्चा होती है और कवि गुरमत की महत्ता की स्थापना करता हैं । अतः, इस प्रकार के सभी प्रसंग कवि की लक्ष्य सिद्धि हेतु आए हैं और कथानक के माध्यम से 'गुरमत' निरूपण का जो उद्देश्य है, उसे सफल बनाने में सहायक होते हैं । इस प्रयोजन के लिए अनेक काल्पनिक प्रसंगों का भी समावेश किया गया है । यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस बृहद्आकार की रचना में ऐसे बहुसंख्यक प्रसंग आए हैं और उनकी योजना में कवि ने अपने काव्य–कौशल का पूरा परिचय दिया है ।

कथानक में विविधता भी है और सम्बद्धता एवं प्रवाह भी । यद्यपि कथा में इतिवृत्तात्मकता काफी है । पुनरावृत्ति भी देखने को मिलती है, तथापि भावपूर्ण, ओजस्वी एवं मार्मिक प्रसंगों की भी कमी नहीं है । कुल मिला कर इस प्रबन्ध का कथानक एक महाकाव्य की गरिमा से युक्त है । उसमें उदात्तता एवं प्रौढ़ता है ।

भाई सन्तोख सिंह ने गुरुओं के प्रति धार्मिक अनुराग से प्रेरित होकर इस ग्रन्थ की रचना की है । इसलिये इसमें गुरुओं को अवतारी अथवा दिव्य

रूप में चित्रित किया गया है । उनकी महिमा का गुणगान किया गया है और युग की राजनैतिक अवस्था की अपेक्षा सांस्कृतिक एवं धार्मिक अवस्था का चित्रण अधिक विशदता से किया गया है । 'गुरुं प्रताप सूरज' का रचयिता न तो गुरूओं का समकालीन है और न ही उनका आश्रित कवि है । वह उनका भक्त है, और पूर्ण निष्ठा से उनका चरित्रांकन करता है । वह उनके 'दीवान' को भी 'दरबार' कहता अवश्य है, किन्तु वह 'गुरु–दरबार' है, जहां न राज–दरबार का सा वैभव है न विलास । यहां राजा और रंक का कोई भेद नहीं है, लंगर चलता है, जहां ऊंचे नीचे सब भोजन करते हैं, गुरु जी भी साथ बैठ कर वहीं भोजन करते हैं । वहां रबाबी राग गाये जाते हैं और हरि–कीर्तन होता है । जितना अन्न आता है, सारा उसी दिन पका दिया जाता है, अगले दिन के लिये कुछ शेष नहीं रहता, संग्रह का कोई भाव नहीं है । कवि गुरूओं को 'भव–भार उतारण' तथा 'तुरकान को तेज निवारन' के हेतु अवतरित परमेश्वर का रूप मानता है । यहां भगवान स्वयं इक्ष्वाकु को यह वरदान देते बताए गए हैं कि पांच हज़ार वर्ष के पश्चात् वे नानक के रूप में अवतार लेंगे ।

कवि ने यहां इतिहास को पौराणिक रूप देने की चेष्टा की है । गुरूओं की अन्य अवतारों के साथ अभेदता एवं एकरूपता भी चित्रित की गई है। बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे पौराणिक महत्त्व निर्दिष्ट किया गया है । गुरूओं के चरित्र के साथ अनेक अतिमानवीय एवं अलौकिक घटनाओं का समावेश भी किया गया है और अनेक पौराणिक कथायें बीच–बीच में आई हैं । इन पौराणिक कथाओं को भी कवि ने पुरातन इतिहास ही कहा है ।[१] एक ओर वह इतिहास को पुराण के सांचे में ढालता है और दूसरी ओर पुराण को इतिहास के वेश में प्रस्तुत करता है । वस्तुतः, कवि का उद्देश्य यहां गुरूओं का इतिहास लिखना जरूर है, लेकिन ऐसा उसने धर्म–भावना से प्रेरित होकर किया है और ऐसे तथ्यों, घटनाओं एवं प्रसंगों आदि का ही

१.– कहनि लगे इतिहास पुरातनि ।

नियोजन किया है, जिनसे उनके महत्त्व एवं गौरव की प्रतिष्ठा हो सके । फिर उनकी चिन्तनधारा का प्रतिपादन करना भी तो उसका एक लक्ष्य था । उसने ऐतिहासिक घटनाओं में आवश्यकतानुसार परिवर्तन या संशोधन भी किया है और अनेक नई घटनाओं, प्रसंगों, पात्रों आदि की उद्‌भावना भी कर ली है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह एक ऐतिहासिक काव्य है, इतिहास ग्रन्थ नहीं । कवि को अपनी प्रेरणा, अनुभूति एवं उद्देश्य के अनुरूप इतिहास कथा को प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता रही है ।

सिक्ख गुरुओं ने यवन शासकों के अत्याचारों से दलित एवं प्रताड़ित भारतीय जनता में एक नवीन सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना जागृत की थी । अधर्म, अन्याय., अनीति और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की भावना और साहस पैदा किया था । 'गुरू प्रताप सूरज' में इस नवचेतना को विशेष रूप से मुखरित किया गया है । इसमें युग का ही यथार्थ चित्रण नहीं किया गया, जनता की निराशा, अभिलाषा एवं उनकी उभरती हुई चेतना को भी स्वर दिया गया है ।

भाई सन्तोख सिंह एक युग प्रवर्त्तक कवि थे । इसलिये इस ऐतिहासिक सन्दर्भ का उपयोग उन्होंने अपने युग–परिवेश के प्रसंग में भी सफलतापूर्वक किया और अपनी युग–परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए गुरूओं के इतिहास के माध्यम से जनजीवन में एक नई सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का संचार किया, अपने युगबोध को अभिव्यंजित किया । उनकी रचना में जो यवन–विरोधी स्वर है, यह उसी की देन है ।[1] 'गुरु प्रताप सूरज' के रूपक में तुरक शासकों, उनके अत्याचारों, उमरावों, मुल्लाओं, शरहा आदि के लिये अन्धकार, निशा, उल्लू, चमगादड़, जम्बुक आदि प्रतीकों का प्रयोग भी उनकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है । कवि ने तो अंग्रजों द्वारा कैथल की लूट के प्रति भी अपनी तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की है, जो उनकी देश–

१. तुरक तेज़ दृढ़ तरु उखारा ।
हिन्दु धरम को राख्यो प्रतिपारा ।

प्रेम की भावना को व्यंजित करती है । निःसन्देह, कवि इस ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से नई राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना जागृत करने में, सद्धर्म और न्याय की रक्षा तथा अन्याय और अधर्म का साहसपूर्वक विरोध करने की भावना को उद्दीप्त करने में पूरी तरह सफल हुआ है । उसने गुरुओं की चिंतनधारा के आलोक में अपने युग के जनसमूह की मनोवृत्तियों का परिष्कार एवं उन्नयन करने का भी मंगलमय कार्य किया है ।

भाई सन्तोख सिंह ने अपने इतिहास–बोध के साथ अपने भाव–बोध का भी सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' का युग–चित्र अत्यन्त व्यापक है । इसमें उस युग के पंजाब एवं हरियाणा का सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास सजीव हो उठा है । इसमें लगभग 300 वर्षों की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अवस्था का यथार्थ एवं विशद वर्णन हुआ है ।[१] हिन्दी में कितने काव्य–ग्रंथ ऐसे हैं, जिनका इतिहास–बोध इतना जीवंत है और जिनका युग–चित्र इतना विशद, व्यापक एवं यथार्थ है तथा जिनमें युग की चेतना की इतनी ज्वलंत अभिव्यंजना हुई है । 'गुरु प्रताप सूरज' इस दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व की रचना है ।

'गुरु प्रताप सूरज' एक धर्म–प्रधान काव्य है । इसमें कवि का मुख्य उद्देश्य गुरुओं की चरित्र–गाथा के माध्यम से उनके आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन करना है ।[२] उन्होंने गुरुओं के अनुरूप ही तन, परिवार, जाति, धन आदि 'हउमै' के विविध रूपों, उसके परिणाम तथा उसके निराकरण के उपायों का विशद विवेचन किया है । उनके अनुसार 'हउमै' का नाश गुरु–उपदेश, गुरु की कृपा, सत्संगति तथा नाम–स्मरण आदि से होता है ।

भाई सन्तोखसिंह ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया तथा साधना–मार्ग के विविध तत्त्वों का विशदता एवं गम्भीरता से निरूपण किया है । उसके ये

१. विस्तार के लिये द्रष्टव्य 'श्री गुरु प्रताप सूरज' भूमिका (लेखक)

२. आध्यात्मिक विचारों के लिए द्रष्टव्य–'गुरु प्रताप सूरज के काव्यपक्ष का अध्ययन' (लेखक) ।

आध्यात्मिक विचार प्रायः 'गुरुमत (सिक्खमत) के ही अनुरूप हैं। गुरु स्वयं ही यहां अपने मत को विविध प्रसंगों में व्यक्त करते हैं। कवि ने उनके माध्यम से अनेक परिसंवादों के अन्तर्गत भारतीय धर्म एवं दर्शन के अन्य मतों का भी निरूपण किया है।

कोई भी महाकवि पूर्वकालिक पात्र, विषय–वस्तु या चिंतनधारा का निरूपण उस काल के सन्दर्भ में ही नहीं करता, वरन्, वह उनको आधार बना कर अपने युग के परिवेश और सन्दर्भ में उसे नई अर्थवत्ता भी प्रदान करता है। भाई सन्तोख सिंह ने भी गुरुओं की आध्यात्मिक चिन्तनधारा को उसी रूप में ग्रहण करके तथा उसके महत्त्व का निरूपम करते हुए भी उसे अपने परिवेश तथा अपने युग के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उसमें कुछ ऐसे तत्त्वों का समावेश भी हो गया है, जो पूरी तरह 'गुरुमत' के अनुकूल नहीं हैं। अवतारवादी भावना तथा वैष्णवों, शैवों तथा शाक्तों आदि के साथ कवि ने दृढ़ता से समन्वय का प्रयास किया है।

भाई सन्तोख सिंह ने इस ग्रंथ की रचना कैथल में की थी, जोकि हिन्दुओं का एक प्राचीन तीर्थस्थान है। कुरुक्षेत्र तथा पहेवा जैसे प्रसिद्ध तीर्थ स्थान भी इसी क्षेत्र में हैं। इन स्थानों पर वैष्णवों का अत्याधिक प्रभाव रहा है और इन तीर्थ स्थानों की पौराणिक कथाएं लोक प्रसिद्ध हैं। इसी तरह हरियाणा में शिव की उपासना भी अत्यन्त लोक प्रिय रही है। आज भी प्रत्येक ग्राम–अंचल में एक शिवालय अवश्य मिलेगा। अतः, कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि इस परिवेश ने भाई सन्तोख सिंह को सिक्खमत के साथ वैष्णवों एवं शैवों का समन्वय स्थापित करने के लिये प्रेरित किया हो। बहरहाल एक समन्वयवादी कवि ही युगद्रष्टा एवं लोकनायक कवि हो सकता है। वस्तुतः, जिस प्रकार तुलसीदास ने काशी में रहकर वैष्णवों और शैवों का समन्वय किया था, उसी प्रकार भाई सन्तोख सिंह ने कैथल में रह कर सिक्खों तथा राम एवं कृष्ण भक्त वैष्णवों के समन्वय का प्रयत्न किया। उन्होंने कई स्थानों पर वैष्णवों की पूजा–विधि एवं संस्कारों में पुजारी भावना का भी

वर्णन किया है । देवी की उपासना, उसके प्रकट होने तथा उसके स्तवन आदि का वर्णन भी निष्ठापूर्वक किया गया है । पुराणों का प्रभाव तो इस तरह छलछला रहा है कि किसी भी प्रसंग, किसी भी परिसंवाद में उसे देखा जा सकता है । यदि इस ग्रंथ में आये हुए पौराणिक प्रसंगों एवं पात्रों आदि का पूरा विवरण प्रस्तुत किया जाये तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना हो सकती है ।

हिन्दुओं और सिक्खों की भावात्मक एकता एवं समन्वय का यह प्रयास इस ग्रंथ की अनुपम उपलब्धि है ।

सांस्कृतिक चेतना का जो आलोक इस काव्य में है तथा सत्य, न्याय, सदाचार, आत्म शुद्धि, भक्ति, संयम, संतोष, सेवा, त्याग, दया, परोपकार आदि के द्वारा मानवीय मनोवृत्तियों के उन्नयन करके लोकमंगल की जिस भावना को इसमें प्रश्रय दिया गया है, स्त्रैण भावना से परिपूर्ण विलासमय रीतिकालीन साहित्य में अन्यत्र उसका सर्वथा अभाव है । इस दृष्टि से यह एक अद्वितीय रचना है ।

वस्तुतः, भाई सन्तोख सिंह ने प्राचीन भारतीय अध्यात्म चिंतन के आलोक में सिक्खमत का निरूपण करते हुए उसमें अपने युग की परिस्थितियों एवं परिवेश के अनुरूप राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का समावेश करके एक महनीय कार्य किया है । सारांशतः इस ग्रंथ की रचना में लेखक के निम्न उद्देश्य थे :

(क) एक निष्ठावान सिक्ख की भांति दस गुरूओं के जीवन–वृत्त को कथात्मक रूप में पूर्ण निष्ठा और भक्ति के साथ प्रस्तुत करना । उनकी महिमा का, प्रताप, यश, तेज, भक्ति, शक्ति आदि का वर्णन करना ।

(ख) गुरूओं की चरित्र–गाथा के माध्यम से अथवा अन्य उपदेशात्मक प्रसंगों में 'गुरुमत' के आध्यात्मिक, सामाजिक विचारों एवं आचार–संहिता आदि का निरूपण एवं प्रचार प्रसार करना ।

(ग) गुरुओं के युग परिवेश के सन्दर्भ में उनके विचारों, क्रिया कलापों आदि की ऐतिहासिक सार्थकता, औचित्य एवं उपयोगिता दर्शाना ।

(घ) कवि के अपने युग–परिवेश के सन्दर्भ में उनके विचारों की उपयोगिता एवं महत्ता का निरूपण ।

(ङ) अपने परिवेश के अनुरूप कवि की निजी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति । विशेषतः, सिक्खमत की वैष्णवों, शैवों एवं शाक्तों के साथ समन्वय की प्रवृत्ति तथा अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध लड़ने के लिये वीर–भावना जगाना ।

(च) मानवीय मनोवृत्तियों के परिष्कार, उन्नयन एवं उदात्तीकरण द्वारा वैयक्तिक स्तर पर मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना को जागृत करके मानवीय गुणों एवं मानवीय भावना का विकास करना तथा सामाजिक स्तर पर मानवीय समता एवं मानव एकता की भावना का प्रसार करना ।

ये लक्ष्य ही इस ग्रंथ के मूल प्रतिपाद्य है ।

किसी भी काव्य–रचना की सफलता मानवीय मनोवेगों अथवा संवेदनाओं की सफल अभिव्यंजना पर निर्भर होती है । 'गुरु प्रताप सूरज' यद्यपि धार्मिक भावना से ओतप्रोत एक कथा–प्रधान काव्य है और उसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त एवं उपदेशात्मक वृत्तान्तों की बहुलता है, तथापि भावों एवं मनोवेगों की भी कवि ने भव्य व्यंजना की है । कवि का भावक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसने सभी स्थायी–भावों की विशद अभिव्यंजना की है । इस रचना में काव्य–शास्त्र में निरूपित सभी रसों की निष्पत्ति हुई है । धर्म प्रधान रचना होने के कारण मुख्य रस शान्त है । उसके पश्चात् वीर रस का स्थान है । अद्भुत, करूण, वीभत्स, श्रृंगार, भयानक, रौद्र, वात्सल्य आदि का भी पूर्ण परिपाक हुआ है । 'वीर रस' से सम्बन्धित लगभग 8–10 हज़ार छन्द इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं । कवि ने गुरु हरिगोबिन्द तथा गुरु गोबिन्द सिंह के सभी युद्धों का अत्यन्त विशद चित्रण किया है । प्रत्येक युद्ध की पृष्ठभूमि

देकर युद्ध–कथा का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है । इन युद्ध वर्णनों में पूरी सजीवता, विशदता एवं ओजस्विता है और वीर रस की भव्य व्यंजना हुई है । इन सभी युद्धों में कवि ने युद्ध की तैयारी, सेना की साज–सज्जा, सैनिकों के अस्त्र–शस्त्र एवं वेशभूषा, सेना–प्रस्थान, रणवाद्यों की ध्वनि, धौंसों की धुंकार, खड्गों, भालों तथा अन्य शस्त्रों की चमक–दमक, अश्वों की हुंकार, हाथियों की चिंघाड़, योद्धाओं की भिड़न्त–प्रहार–प्रतिहार, अस्त्र–शस्त्रों की कटाकट, बन्दूकों की दनादन, तोपों की तड़ातड़, वीरों के उत्साह, उनकी गर्वपूर्ण उक्तियां, ललकार–प्रतिललकार, उनके पौरुष, शौर्य, साहस, धैर्य एवं निर्भीकता, उनकी युद्ध–कुशलता एवं ओजपूर्ण अनुभावों, टूटे–फूटे अस्त्र–शस्त्रों, क्षत–विक्षत योद्धाओं एवं अश्वों आदि से रक्त रंजित तथा उन पर मंडराते गिद्धों, शृंगालों से वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करने वाली युद्ध–भूमि आदि का अत्यन्त यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है । वीर रस से सम्बन्धित एक उदाहरण देखिए:

'यो कहि पीस के दांत परे गुरु ऊपर एक ही बारि घने ।
होति भए थिर थंभ मनोगन छोरति बानको कोप सने ।
अग्र जु आवति तां उथलाबति, ज्यों बड़ गाज मुनारे हने ।
कान प्रमान लौ तानि चलावति मारे अनेक ही कौन गिने ।

(रा. 6/11/28)

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित युद्धों को 'धर्मयुद्ध' का नाम दिया गया है, क्योंकि वे अत्याचार, अन्याय, असत्य एवं अधर्म के विरुद्ध लड़े गए हैं । इस क्षेत्र में 'दशम ग्रन्थ' से लेकर ऐसे अनेक वीर काव्यों की रचना हुई है, जिनमें वीरता के उदात्त रूप की अभिव्यंजना हुई है । 'गुरु प्रताप सूरज' उसी परम्परा की रचना है । यह काव्य सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना से युक्त वीर रस का एक आर्दश रूप प्रस्तुत करता है । 'सत्य पराक्रमः' की अवधारणा से युक्त यह वीरकाव्य रीतिकालीन वीरकाव्यों के संदर्भ में एक विशिष्ट महत्त्व की रचना है । भाई सन्तोख सिंह मानवीय भावों के सच्चे

पारखी और उनके कुशल चितेरे थे। वे एक अनुभूतिशील कवि थे, यही कारण है कि मानवीय मनोवेगों की व्यंजना में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। उनकी भाव व्यंजना में अनुभूति की तीव्रता, गहराई एवं मनोवैज्ञानिकता है। एक लोकनायक कवि की भांति भाई संतोख सिंह ने मानवीय सद्वृत्तियों को उभारने, मनोवेगों के परिष्कार एवं उन्नयन का स्तुत्य कार्य किया। उनकी भावाभिव्यंजना में, चाहे वह प्रेम से सम्बन्धित है या घृणा से, चाहे साहस और उत्साह से प्रेरित हो या क्रोध से, सर्वत्र उदात्तता है।[१]

कथावस्तु में रोचकता एवं सरसता लाने के लिए कवि प्रायः उसमें वस्तु–सौन्दर्य[२] का भी समावेश करते हैं। संस्कृत महाकाव्यों में तो बरबस ऐसे वर्णनों की योजना की जाती थी, जिनमें कवि को अपनी कल्पना–शक्ति एवं चित्रात्मक–प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिल सके। रीतिकालीन काव्यों में भी इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं, किन्तु उनमें कोई विशेष ताज़गी या नवीनता नहीं है। वही परम्परागत वर्णन–पद्धति दृष्टिगोचर होती है। इसके विपरीत 'गुरु प्रताप सूरज' में कवि ने प्रकृति सौन्दर्य तथा नगरों, वनों, उपवनों, ग्रामों, घोड़ों, पशु–पक्षियों, तम्बुओं, स्त्री–पुरुषों के सौन्दर्य, वेश–भूषा, आभूषणों, सभा–मंडपों, विवाह, युद्ध, आखेट एवं होली आदि पर्वों के अत्यन्त विशद, सजीव, स्वाभाविक एवं मनोहर चित्र उपस्थित किये हैं। ये सभी वर्णन प्रसंग एवं देश–काल के अनुरूप हैं, तथा उन्हें कथा की आवश्यकता के अनुपात से ही अपेक्षित विस्तार दिया गया है। वे कथानक की गति एवं प्रवाह में बाधा उपस्थित नहीं करते, वरन् उसे सरस, रोचक एवं काव्यमय बनाते हैं। 'आखेट' का एक चित्र देखिए–गुरु हरिगोबिन्द खड्ग से सिंह का शिकार कर रहें हैं:–

सिर उपरि जब आवनि लागा। आड़ सिपर को रोकसि आगा।
रह्यो ओज करि अग्र न आवा। ढाल झंझोरि न बदन चलावा।30।

---

१. 'भाव–व्यंजना' के विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टवय : 'गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन, पृ. ६९–१०० (लेखक)

२. 'वस्तु वर्णन' के विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य (वही, पृ. १०१–१११)।

तिहं छिन गुरु शमशेर निकासी । तीखन भीखन चलि चपला सी ।
स्यो पाई दिढ़ खंभ समाना । नहीं थान ते चलै सुजाना । 31 ।
कोप गुरु के मुख पर छायो । भ्रिकुटि नचति लाल हुई आयो ।
फरकति अधर अरुन द्रिग भए । सिपर धकेला पूरब दए । 32 ।
जुग पग मुख ढाले पर तीनि । हटि पीछे तन ऊंचो कीनि ।
दाहन कर को बल करि सारा । खड़ग पुलादी गुरू प्रहारा । 33 ।
कट ते कटि करि दोधर पर्यो । कराचोल धरनि महि बर्यो ।
गेरि शेर शमशेर निकारी । रिस ते बहु बल संग प्रहारी । 34 ।

(रा. 6.23)

शेर के शिकार का ऐसा ओजस्वी, साहसपूर्ण, सजीव एवं यथार्थ चित्र हिन्दी साहित्य में अन्यत्र शायद ही मिल सके । यहां कवि ने गुरु हरिगोबिन्द की क्रियाशीलता, कार्यकुशलता, पौरुष, साहस एवं उनके अनुभावों का सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है । यही नहीं, इससे पूर्व बन की सघनता एवं विकटता, पशुओं की भीषणता, आखेट की कठिनाइयों आदि का भी विशद वर्णन किया गया है जो शिकार के दृश्य को पूर्णता प्रदान कर देता है । शिकार करने वाले वीरों की बेशभूषा, उनके आयुधों तथा उनके अश्वों आदि की साज–सज्जा आदि का वर्णन करना भी वे नहीं भूले ।

इसी प्रकार होली का वर्णन भी एक विशिष्टता लिये हुए है । उससे होली का मादक, स्वच्छन्द एवं आह्लादपूर्ण वातावरण ही प्रस्तुत नहीं होता, वरन् युग परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समता तथा वीरता और साहस से युक्त राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक चेतना की भी अभिव्यंजना होती है । गुरु गोबिन्द सिंह के होली खेलने का एक मधुर एवं सुरुचिपूर्ण चित्र देखिए :

बादर गुलाल के करति जाति चले गुर,
संगति मैं धूम पई फाग बड़े खेलते ।
घेरि घेरि बदन पै गेरि गेरि फेर–फेर,

हेरि हेरि हरखति नैरे हुई मेलते ।
उठै महिकार गंध पाई पौन मंद मंद,
सीतल बहित सिख अंगन मैं झेलते ।
निकसे आनन्दपुर मानति आनंद ब्रिंद,
तीर सतद्रुव के गए हैं रेल पेलते । 101
कीने सिख संगति दुपास खरे आपस मैं,
डारि डारि मूठ पिचकारी सों भिरति है ।
बदन शमश अरु केसरी पै गयो जम,
रंग की फुहार फेर ऊपर ढरति है ।
होति न चिनारी इक सारी सभि होइ गए
रौर को मचावैं दौर ठौर न टरति हैं ।
बिसद बरन के बसन को अरन्न भए,
मानो जंग जीत के बिलसनि करति हैं ।

(रि. 3.27)

गुलाल और अंबीर से रंजित इन समूह चित्रों को कुछ हास्य विनोदपूर्ण प्रसंगों के समावेश से और भी मनोहर बना दिया गया है । इन संत-योद्धा सिंहों की होली का जैसा भव्य चित्रण इस ग्रंथ में हुआ है, क्या रीतिकालीन कवि वैसा कहीं कर पाये ? विलासिता अथवा रसिकता तो इन प्रसंगों को छू तक नहीं सकी । सांस्कृतिक दृष्टि से इनका अत्यधिक महत्त्व है ।

इसी प्रकार अन्य वर्णनों में भी सजीवता, यथार्थता, भव्यता एवं चित्रात्मकता है और कवि ने उनमें अपनी चित्र-विधायिनी कल्पना शक्ति तथा काव्य कुशलता का अच्छा परिचय दिया है ।

भाई सन्तोख सिंह ने प्रकृति सौन्दर्य[१] का भी अत्यन्त भव्य चित्रण किया है । उन्होंने वन, उपवन, पर्वत, नदी, निर्झर, सरोवर, प्रभात तथा विभिन्न ऋतुओं का अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव, चित्रात्मकर एवं मनोहारी वर्णन

१. प्रकृति चित्रण के विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य (वही, पृ. १०१-१०५) ।

किया है। इससे पूर्व हिन्दी में प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन रूप में अथवा अलंकरण के रूप में ही हुआ है। भाई सन्तोख सिंह ने प्रकृति का स्वतन्त्र एवं संश्लिष्ट चित्रण किया है, जिसका इस युग के साहित्य में अन्यत्र सर्वथा अभाव है।

कवि का प्रकृति-प्रेम उन्हें बार बार ऐसे रम्य स्थलों की ओर ले जाता है, जहां वे नदी, झरनों, सरोवर, उपवन, वनों आदि का मनोहर वर्णन कर सकें।

झरनों का एक छोटा सा चित्र देखिए :

हेमकूंट परबत बिसतारा। झरने झरहिं अनेक प्रकारा। 21
निस बासुर जिन महिं धुनि भारी। सुन्दर बिमल प्रवाहति बारी।
कहूं वेग सौ चलहि सजोर। कहूं भ्रमर का परहि बिलोर। 31
फटक समान स्वच्छ जल सुन्दर। नारे बहैं मीन गन अंदर।
कहूं फैन उज्जल निधि रूरं। कित सुनीयति धुनि दुरंहुदूरं। 41

(वही, रा. 11:49)

नदियों का वर्णन करते हुए ऋतुओं के अनुसार उनकी गम्भीरता, स्वच्छता, मलिनता, मंदता, तीव्रता आदि का भी वर्णन किया गया है। उपवनों के वर्णन में उसके पुष्पों, वृक्षों, फूलों, लताओं, पक्षियों एवं सरोवर आदि की शोभा का चित्रांकन किया गया है। सभी ऋतुओं का भी कवि ने स्वाभाविक एवं मनोहारी वर्णन किया है। ऋतुओं के वर्णन में विरहणियों पर पड़ने वाले उनके प्रभाव ने कवि को आकर्षित नहीं किया, वरन् उसका ध्यान तो उनके प्राकृतिक-नैसर्गिक सौन्दर्य पर रहा है। उनके स्वाभाविक, सहज वातावरण को प्रस्तुत करके सामान्य जन पर पड़ने वाले उनके प्रभाव को अवश्य चित्रित किया गया है। वर्षा ऋतु का एक मनोहर दृश्य देखिए :

बिदते जलधर गगन मझारि। ज्यों तन धरहिं संत उपकारी।
कल्लर खेत सकल थल बरखैं। देखि देखि करि जनगन हरखैं। 15।

घुमड़ी घटा घरीक महिं घनी । घोर घोर घन चपला सनी । 24 ।
बड़ी बड़ी बूंदै बहु परी । बरसन लग्यो अधिक भी झरी ।
जित कित नीरप्रवाह चलंता । ऊचे थल ते नंम्रि ढरंता ।
धाइ धाइ नर धामन बरे । बारी बहै बिलोकन करे ।
दल मनिंद घन घने दिसावहिं। इक आवति बरखति इक जावहि ।30।

इसी प्रकार भाई सन्तोख सिंह ने बसन्त, शीत, ग्रीष्म आदि ऋतुओं के भी संश्लिष्ट एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं और उनका वास्तविक वातावरण चित्रित करने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है ।

भाई सन्तोख सिंह के वस्तु वर्णन, प्रकृति चित्रण एवं भाव–व्यंजना को देखने से पता चलता है कि वे एक इतिहास–वेत्ता, दार्शनिक तथा युग वेत्ता समन्वयवादी लोक–नायक ही नहीं थे, वरन् मानवीय संवेदनाओं तथा विविध वस्तुओं का रमणीक चित्रण करने वाले एक सक्षम एवं समर्थ कवि भी थे ।

'रामचरित मानस' की भांति 'गुरु प्रताप सूरज'भी वक्ता–श्रोता की कथात्मक शैली में लिखा गया है । कथा निरूपण में 'गुरु शोभा', 'महिमा–प्रकाश' एवं 'गुरु बिलास' आदि की 'साखी' शैली का अनुकरण किया गया है । इसमें संस्कृत 'महाकाव्यों', अपभ्रंश के 'चरित काव्यों', रीतिकालीन 'चरित्रकाव्यों' एवं सिक्ख गुरुओं के जीवन पर आधारित 'साखियों' तथा लोकगाथात्मक 'वारों' आदि के अनेक तत्व विद्यमान हैं और इस प्रकार इसमें संस्कृत महाकाव्यों की शास्त्रीयता, अपभ्रंश के कथा–काव्यों की सहजता, रीतिकालीन काव्यों की आलंकारिकता, वारों की ओजस्विता तथा पंजाबी लोकगाथात्मक पद्धति का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

'गुरु प्रताप सूरज' की भाषा शैली[१] के मुख्यतः दो रूप मिलते हैं । मंगलाचरण की भाषा परिनिष्ठित ब्रजभाषा है और उनमें हिन्दी के रीतिकालीन

१ – भाषा शैली के विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य– (क) 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्य पक्ष का अध्ययन, पृ. १३३–१३८ (लेखक) । (ख) गुरु नानक प्रकाश–भूमिका । (ग) गुरु प्रताप सूरज–भूमिका, पृ. ५०, ५१

अलंकृत कवियों की सी आलंकारिकता एवं चमत्कार–प्रदर्शन के दर्शन होते हैं । अन्यत्र सर्वत्र सामान्य, सहज एवं व्यावहारिक शैली का प्रयोग किया गया है । भाषा ''ज ही है, किन्तु उसमें पांडित्य, विदग्धता अथवा वक्रता नहीं है । उसमें खड़ी बोली का मिश्रण भी है और आवश्यकतानुसार संस्कृत, फारसी एवं अरबी के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। मुलतानी व पंजाबी के साथ साथ कुछ स्थानीय शब्दों एवं मुहावरों का भी उपयोग किया गया है । कवि ने पात्र, प्रसंग, भाव, विचार, स्थान आदि के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है । विषय–निरूपण, भाव–व्यंजना एवं चित्रांकन आदि में भाषा सर्वथा समर्थ एवं सशक्त है । भाषा पर कवि का पूरा अधिकार है । उसका शब्दकोश अपरिमित है और उसे व्याकरण का पूर्ण ज्ञान है । मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा की व्यावहारिकता एवं सामर्थ्य बढ़ गई है । कुछ बहुत ही मार्मिक सूक्तियां भी देखी जा सकती हैं, जो कवि के गहन अनुभव एवं सूक्ष्म मनन–चिंतन की परिचायक हैं ।

भावों की मार्मिक अभिव्यंजना के लिये, गुण एवं स्वभाव की सशक्त अभिव्यक्ति के लिये, घटनाओं एवं चरित्रांकन में सजीवता लाने के लिये तथा दार्शनिक–आध्यात्मिक विचारों की स्पष्टता के लिये कवि ने प्रायः सादृश्यमूलक अलंकारों–उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि का प्रचुरता से प्रयोग किया है । सुन्दर सांग रूपकों की योजना में उसे असाधारण सफलता मिली है । उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं की जगह–जगह झड़ी सी लग जाती है । बड़ी सहजता से उपमाओं के मोतियों को पिरोया गया है । अधिकतर उपमान, बिम्ब और प्रतीक परम्परा से प्राप्त हैं, तथापि वे भावानुरूप, संवेद्य एवं प्रभावपूर्ण हैं । इस ग्रंथ में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, उदाहरण, दृष्टांत, विरोधाभास, विभावना, असंगति, प्रतीप, उल्लेख प्रतिवस्तूपमा, अप्रस्तुत प्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, दीपक, निदर्शना, परिकर, व्यतिरेक, विनोक्ति, परिसंख्या, विषम, सन्देह, भ्रम, संकर आदि विविध अर्थालंकरों का तथा अनुप्रास, यमक, वीप्सा आदि शब्दालंकारों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है ।[२]

२. अलंकारों के विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य–'गुरूप्रताप सूरज' के काव्य पक्ष का अध्ययन, पृ. २३२–२८२ (लेखक) ।

कथात्मक काव्यों के लिये छन्द एवं लय का भी बड़ा महत्त्व होता है। यह सारा काव्य छंदोबद्ध एवं तुकांत है। इसकी मुख्य पद्धति दोहा–चौपई है, यद्यपि दोहा–हाकल, दोहा–रसावल, दोहा–सवैया, दोहा–पद्धरि, दोहा–ललितपद आदि कुछ अन्य पद्धतियों का भी प्रसंगानुकूल प्रयोग किया गया है। कथात्मक काव्य के लिये यह पद्धति सर्वथा अनुकूल है। 'रामचरितमानस' तथा सूफी प्रेमख्यानों में भी इसी छन्द पद्धति का उपयोग किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि यहां चौपाई एवं चौपई का भेद अस्पष्ट है।

संस्कृत काव्य वर्णिक छन्दों में लिखे जाते थे, जबकि अपभ्रंश में मात्रिक छन्दों का प्रचलन हुआ, जो लोक–रुचि के अधिक निकट थे। 'गुरु प्रताप सूरज' में दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें चाचरी, रसावल, मधुभार, रुणझुण, हरिबोलमना, नवनामक, हंसक, साबास, प्रमाणिका, तोमर, चम्पकमाला, भुजंगप्रयात, तोटक, निशिपालक, चंचला, नराज, सवैया, अनुष्टुप, कवित्त, अनंगशेखर आदि 20 वर्णिक छन्द तथा चौपई, हाकल, पद्धरि, अडिल, निसानी, ललितपद, त्रिभंगी, दोहरा, सोरठा, अमृतधुनि, छप्पय आदि 11 मात्रिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। छन्द संख्या मात्रिकों की कहीं अधिक हैं।

कवि का छन्द–शास्त्र पर पूर्ण अधिकार है, तथा रस, भाव, विषय आदि के अनुरूप तीव्र अथवा मंदगति छन्दों का प्रयोग किया गया है। छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा छन्द प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, पंजाबी और फारसी के छन्द भी हैं। युद्ध–वर्णन में युद्ध की गति के अनुरूप जिस तेजी से छन्दों को बदला गया है उससे युद्ध वर्णन की ओजस्विता एवं सजीवता की अभिवृद्धि हुई है। छन्द के प्रयोग में 'दशम ग्रंथ' एवं 'गुरुविलास' (सुक्खा सिंह) आदि से प्रभावित होते हुए भी कवि ने अपनी मौलिक काव्य–प्रतिभा का परिचय दिया है।[१]

१. छन्दों के विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य– वही, पृ. १५०–२२०।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भाई सन्तोख सिंह एक लोकनायक एवं युग प्रवर्त्तक कवि थे और 'गुरु प्रताप सूरज' एक ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। यह पौराणिक भावना से अनुप्राणित एक ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें सिक्ख–गुरुओं की चरित्र–गाथा एवं उनकी चिंतनधारा का भव्यरूप में निरुपण हुआ है। युग–परिवेश का विशद एवं यथार्थ चित्रण करते हुए कवि नवीन सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करता है। वह हिंदुओं और सिक्खों की सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करता है और मानव मंगलकारी भावनाओं को प्रश्रय देता है। सामाजिक समता एवं मानवीय एकता का प्रवर्त्तन करता है और सत्य और न्याय की रक्षा हेतु असत्य, अधर्म, अनीति, अन्याय, और अत्याचार का साहसपूर्वक विरोध करने का उत्साह उत्पन्न करता है। यद्यपि इसमें इतिवृत्तात्मकता अधिक है, तथापि मनोवेगों की मार्मिक अभिव्यंजना, वस्तु–वर्णन की रमणीयता तथा अलंकार–सौन्दर्य आदि की दृष्टि से भी 'गुरु प्रताप सूरज' एक श्रेष्ठ काव्य रचना है।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने संवत् 1700 से 1900 तक के काल को 'रीतिकाल' का नाम दिया है। कालक्रमानुसार भाई संतोख सिंह (मृत्यु संवत् 1900) रीतिकाल के अन्तिम चरण के कवि हैं। हिन्दी–भाषी क्षेत्र में, इस काल में रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध काव्य ही अधिक लिखा गया, जिसमें रीति, शृंगार एवं अलंकरण की प्रवृत्तियां प्रमुख थीं। भोग एवं विलास से पूर्ण राज्याश्रयों में पोषित होने के कारण उसमे रसिकता एवं कामुकता अधिक थी। स्वच्छन्दतावादी काव्य में भी शृंगारिकता की अभिव्यक्ति उन्मुक्त रूप से हुई। उस काल के काव्य में उच्च मानवीय भावना अथवा उदात्त सांस्कृतिक चेतना का अभाव था। समाज के एक वर्ग–विशेष की शृंगारिक मनोवृत्ति का ही चित्रण उस युग के कवियों ने अधिक किया। चिंतामणि, मतिराम, देव, बिहारी, भिखारीदास, मंडन, श्रीपति मिश्र, कुलपति मिश्र, आलम, ठाकुर, पद्माकर, घनानन्द, वृन्द, बेनी आदि इस युग के सभी प्रमुख

कवियों की काव्य–चेतना इसी कोटि की है। रीति कवि के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि सामान्य रूप से उसके व्यक्तित्व में चारण, सभाकवि, राजगुरु, आचार्य और भक्त का न्यूनाधिक समन्वय था। वे प्रायः निम्न वर्ग से सम्बन्धित थे, किन्तु उन्हें काव्य–रचना की प्रेरणा राजदरबारों के वैभव और विलासपूर्ण वातावरण मिलती थी। इसी लिये कंचन और कामिनी के प्रति उनका अत्यधिक आकर्षण था। इस काल में जो वीरगाथात्मक काव्य लिखा गया, उसमें भी कर्म–सौन्दर्य से युक्त उत्साह की अभिव्यंजना उस रूप में नहीं हुई, जो 'वीरकाव्य' का वास्तविक आदर्श होता है। इस काल के अधिकतर 'वीरकाव्य' एक प्रकार से 'चारण पद्धति' पर रचित, आश्रयदाता राजाओं की अतिशयोक्तिपूर्ण एवं अत्युक्तिपूर्ण विरुदावलियां अथवा प्रशस्तियां मात्र हैं। वीरता का वह आदर्श जिसे 'बाल्मीकि रामायण' में 'सत्यपराक्रम' की संज्ञा दी गई है, उनमें दिखाई नहीं पड़ता। वास्तविकता तो यह है कि भूषण तथा गुरु गोबिंद सिंह जैसे एक दो कवियों को छोड़ कर इस युग के काव्य में पौरुष का अभाव रहा। इस के स्थान पर इस काल के काव्य में स्त्रैण भावना ही प्रमुखता से परिव्याप्त रही। रीतिकवि ने भक्ति–भावना से पूर्ण भी कुछ कविता लिखी, किन्तु उनकी भक्ति 'राधिका–कन्हाई सुमिरन के बहाने' से शृंगारिकता को अभिव्यक्त करने की ही रही। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार "उनकी भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का एक अंग थी"। उनका कथन है कि 'रीतिकवियों के विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल ही नहीं था, कि भक्ति रस में आस्था प्रकट करते।'[१]

रीतिकाल में विविध मतों एवं सम्प्रदायों के माध्यम से भी धार्मिक साहित्य लिखा गया, लेकिन उसमें भक्तिकालीन उदातत्ता, ओजस्विता, जीवन्तता एवं प्रभविष्णुता नहीं है। यह अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का शुष्क एवं प्राणहीन पिष्टप्रेषण है अथवा धार्मिक सिद्धान्तों एवं साम्प्रदायिक

१. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ. १८०

विचारधारा का इतिवृत्त मात्र है। कुछ सम्प्रदायों में धार्मिकता की ओट में अतिश्रृंगारिक भाव–भंगिमाओं की ही अभिव्यक्ति हुई है। रामभक्ति परम्परा के अन्तर्गत भी अब मर्यादा एवं नैतिकता के स्थान पर 'मधुर–उपासना' के नाम पर जो कुछ लिखा गया, वह इतना छिछला और अश्लील है कि उसे धार्मिक साहित्य कहते हुए भी संकोच होता है। सूर, तुलसी और कबीर के भक्ति साहित्य में जो उदात्त एवं जीवंत सांस्कृतिक चेतना है, उसका इस काल के भक्ति–साहित्य में सर्वथा अभाव है। 'गुरु प्रताप सूरज' इस दृष्टि से एक विशेष महत्त्व की रचना है। रीतिकाल के अन्तिम चरण में लिखी जाने पर भी यह मूलतः धार्मिक भावना से अनुप्राणिक एक प्राणवान रचना है।

रीतिकाल में बहुत कम रचनाएं ऐसी हैं, जिन्हें महाकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है और शायद एक भी रचना ऐसी नहीं है जिसमें युग–जीवन का सर्वांगीण और विशद चित्रण यथार्थता से हुआ हो। स्वस्थ रचनात्मक दृष्टि का भी इस युग के साहित्य में प्रायः अभाव है। नवीन सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का भी सक्षम प्रयास बहुत कम कवियों ने किया। वास्तविकता तो यह है कि भक्तिकाल के कवियों ने जिस सांस्कृतिक–सामाजिक चेतना का उद्बोधन किया था, उसका इस काल में पूर्णतः ह्रास हो गया था तथा इस युग के कवियों की दृष्टि संकुचित एवं मनोवृत्ति विकृत हो गई थी। 'रामचरितमानस' जैसे महाकाव्यों की परम्परा चुक गई थी।

कालक्रम से भाई संतोख सिंह इसी ह्रासोन्मुखी युग के कवि हैं, लेकिन वे युगधारा में डूबे नहीं, न बहे ही; वरन् एक युगान्तरकारी कवि की भान्ति उन्होंने उस युग की परंपरा को एक नई दिशा दी और युगधारा को एक नया मोड़ दिया। 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' का अध्ययन करने से हम पाते हैं कि काव्य–चिंतन, काव्यप्रवृत्तियों एवं काव्यशैली आदि की दृष्टि से रीतिबद्ध अथवा रीतिमुक्त काव्यधारा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रृंगारिकता एवं रीति का इनमें अभाव है। अलंकरण के प्रति भी कवि का मोह नहीं है। वस्तुतः, कालकम से रीतिकाल के कवि होते हुए भी काव्य–

चिंतन एवं काव्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से संतोख सिंह भक्तिकाल के प्रतिष्ठित कवियों–कबीर, सूरदास एवं तुलसीदास आदि के निकट पड़ते हैं । भाई सन्तोख सिंह राजाश्रित कवि अवश्य थे, किन्तु वे गुरुओं के निष्ठावान भक्त थे । इस लिए उन्होंने अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा में किसी ग्रंथ की रचना नहीं की, वरन् अपने इष्टदेव–गुरुओं की यशोगाथा का वर्णन ही निष्ठाने पूर्वक किया । उन्होंने अप आश्रयदाता के मनोविनोद के लिये शृंगारिकतापूर्ण काव्य भी नहीं लिखा, वरन् धार्मिक भावना तथा सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण काव्य का सृजन किया । कितने आश्चर्य की बात है कि रीतिकाल अथवा शृंगार काल के अन्तिम चरण की रचना होते हुए भी 60,000 छन्दों के इस महाकाव्य में शृंगारिकता, रसिकता अथवा कामुकता का नामोनिशान भी नहीं है । जहां कहीं कुछ शृंगारिक वर्णन प्रासंगिक रूप में आए भी हैं, वहां उनके प्रति अनुरिक्त या आसक्ति पैदा करने के स्थान पर उनके प्रति विरक्ति एवं अनासक्ति ही उत्पन्न की गई है जो रीतिकालीन काव्य–चेतना के सर्वथा प्रतिकूल तथा भक्तिकालीन काव्य चेतना के अनुरूप है ।

'गुरु प्रताप सूरज' एक ऐसी रचना है, जिससे हिन्दी साहित्य के इतिहास में सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं राष्ट्रीय जागरण का प्रतीक माना जा सकता है । सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से इसमें 'रामचरितमानस' की सी विशदता एवं प्राणवत्ता है और राष्ट्रीयता की दृष्टि से यह आगे आने वाले युग की आहट देता है । गुरुओं के इतिहास के माध्यम से इसमें भारतीय चिंतनधारा का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है और हिन्दुओं एवं सिक्खों की सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता को दृढ़ करने का सफल प्रयास किया गया है । इस दृष्टि से भी रीतिकालीन साहित्य में यह विशिष्ट रचना है । मध्ययुगीन संस्कृति, समाज, धर्म, दर्शन और इतिहास का जितना विशद, सर्वांगीम एवं यथार्थ चित्रण इस रचना में हुआ है, वह रीतिकाल के समग्र साहित्य में उपलब्ध नहीं हो सकता । पौरुष, शौर्य एवं पराक्रम का भी जितना उदात्त

एवं महनीय आदर्श इस रचना में व्यंजित हुआ है, वह भी रीतिकाल में रचित किसी अन्य वीरकाव्य में उपलब्ध नहीं है । वस्तुतः, यह पौरुष का काव्य है, जिसका स्त्रैण भावना से पूर्ण उस युग के साहित्य में विशिष्ट महत्त्व है । 'दशम ग्रंथ' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' इस काल की दो ऐसी रचनाएं हैं, जिनमें भक्ति और वीरता की दो प्रवृत्तियां सक्षमता से उभर कर सामने आती हैं और रीतिकाल के इतिहास चिंतन को इससे एक नई दिशा और दृष्टि मिलती है । इसके आधार पर भक्ति और वीरता को भी हमें इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियां मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है ।

वस्तुतः, युग–चेतना, काव्य चिंतन, काव्य–प्रवृत्ति एवं काव्य–शैली सभी दृष्टियों से 'गुरु प्रताप सूरज' विशिष्ट एवं अद्वितीय रचना है और इस रचना के सामने आने से रीतिकालीन इतिहास–चिंतन को एक नई दृष्टि मिली है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि रीतिकाल वस्तुतः भक्तिकाव्य का ही बढ़ाव था । हिन्दी भाषी क्षेत्र में भक्तिकालीन प्रवृत्तियां क्षीण पड़ चुकी थीं पर इस क्षेत्र में वे अभी भी उतनी ही सशक्त एवं जीवंत थीं । यहां भक्ति की प्रवृत्ति के साथ पौरुष, निर्भीकता एवं राष्ट्रीयता की चेतना भी जुड़ गई थी। भक्ति और वीरता का यह समन्वय इस साहित्य की विलक्षण देन है ।

भाई संतोख सिंह की मृत्यु (संवत् 1900) के साथ ही रीतिकाल का अन्त हो जाता है और हिन्दी साहित्य में एक नये युग का प्रवर्त्तन होता है, जिसे 'पुनर्जागरण काल' अथवा 'पुनरुत्थानकाल' की संज्ञा भी दी जाती है । पुनर्जागरण और पुनरुत्थान की जिस चेतना का प्रादुर्भाव इस काल में हुआ, उसकी अभिव्यक्ति 'गुरु प्रताप सूरज' में पहले ही हो चुकी थी । उस चेतना को प्रेरित और उद्दीप्त करने में निश्चय ही 'गुरु प्रातप सूरज' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । यह ग्रन्थ गुरुमुखी लिपि में लिखा गया था, इसलिये हिन्दी भाषी क्षेत्र में इसका समुचित प्रचार नहीं हो पाया । अतः, परवर्ती हिन्दी–साहित्व पर 'गुरु प्रताप सूरज' का प्रभाव खोजना संगत प्रतीत नहीं होता । फिर भी परोक्ष रूप में इस युग की काव्य चेतना को इस ग्रन्थ ने प्रभावित

किया है । भारतेन्दु जी बाबा सुमेर सिंह के काफी सम्पर्क में रहे, उनके काव्य–चिंतन से पर्याप्त प्रभाव भी ग्रहण किया । बाबा सुमेर सिंह ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि थे और सिक्ख–काव्य परम्परा से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं यदि भारतेन्दु को 'गुरु प्रताप सूरज' ने उनके माध्यम से परोक्ष रूप में प्रभावित किया हो । 'गुरु प्रताप सूरज' के पश्चात पंजाब में पंथ प्रकाश', 'गुरु पद प्रेम प्रकाश' आदि जो भी ग्रंथ लिखे गए उन पर 'गुरु प्रताप सूरज' का प्रभाव सर्वमान्य है ।

(जयभगवान गोयल)

काव्य सौरभ

मंगला चरण (इष्टदेव)

सरब बयापी[१] नित नयो[२] सति चित आनंद रूप[३] ॥
मो उर मैं प्रगटो सदा, जो चर अचर अनूप[४] ॥ (नानक प्रकाश)
तीनोकाल सु अचल रहि अलंब[५] सकल जगजालि ।
जाल काल[६] लखि मुचति[७] जिसि करता पुरुख अकाल ॥१॥
छोनी[८], सूरज, अगनि, जम, वायु त्रास जिसि पाइ ।
निज सुभाव महिं थिति रहति, अस ब्रह्म रिद बिदताइ ॥२॥
मरम न जान्यों जाइ जिसि, भरम मिटे मिलि जाइ ।
करम धरम अरु भगति फल, अस अभेद को पाइ ॥३॥
भान होति जग जास ते रजू भुजंग समान ।
मान हानि करि जानि तिह तम अनादि कहु भानु ॥४॥
सति चेतन आनंद युत नाम रूप जग पंच ।
संत दुहनि उर परहरै तिन तीनहु को संच ॥५॥

(गुरु नानक देव)

सवैया

कारितारनि[९] से शुभ बाक बिलास विहंग बिकारन को करि तारनि[१०] ।
करतार नहीं मन जानति जे तिनके हितको सिफती[११] करि तारन ।
करि तारिनि पाप उतारन को गन दंभ छपै[१२] सविता करितारन[१३] ।
करतार निहार गुरू बर नानक दास उदारन जिउं करि तारनि[१४] ॥६॥

१. सर्वव्यापक (अकारो वासुदेवः स्यात्) २. सर्वदा नवीन, काल का जिस पर कोई प्रभाव नही पड़ता । ३. सच्चिदानन्द रूप । ४. जो जड़ या चेतन की सारी सृष्टि से सुन्दर है । ५. आलम्बन (आश्रय) ६. काल की फांसी ७. छूट जाती है । ८. पृथ्वी । ९. कलियुग से तारने वाले । १०. बिकार रूपी पक्षियों को ताड़ने (डांटने–नष्ट करने) वाले । ११. फारसी शब्द सिफत–यश १२. पाखंडों के समूह छिप जाते हैं । १३. सूर्य के उदित होने से तारों के समान । १४. जिस प्रकार जहाज यात्रियों को पार करता है ।

बेदी बंस भूषन जे पूषन, अदूषन से[१],
तिमर कलूखन[२] पखंड छपि तारे हैं ।
पीर सिद्ध धीर करामात के गहीर[३] गन,
मान सैल[४] चढ़े गुरू नानक उतारे हैं ।
देशनि विदेश फिर जंबूदीप दीप समु,
कीने हैं करोरों सिक्ख भवजल तारे हैं ।
जसु बिस्तारे भारे, विशै बिस तारे बहु[५],
खोलि मोह तारे, बादी बाद कर तारे[६] ॥

मिटि कै बिकारनि[७] ते शरन परीजै नित,
नाम के उचारन ते मोह जाति घटिकै[८] ।
घट कै मझार ध्यान धारनि ते पार होहि,
मन टिक जाइ, विशियान ते उलटिकै[९] ।
लटकै न सिर तरवायो[१०] है गरभ बीच,
पर्यो बसि सदा बहु बंधनि बिकटकै[११] ।
कटि कै सु[१२] देहिं मोख ऐसे गुरु नानक जी,
बंद हौं पदारबिंद इंद्रिनि सिमटिकै ॥

तारे अनेक बिबेक जहाज़ दे[१३] खोलि दिये उर मोह कि तारे[१४] ।
तारे बिसाल पखंडि प्रचंडि जे[१५], आगे अरे तिन मान उतारे ।
तारे बिलोचन ते दरसे, उबरे सु असंख जथा नभ तारे[१६] ।
तारे तरे अरु मारे मरें गुरु नानक कीनि भए तम तारे ।।४।।

---

१. दोषरहित सूर्य समान २. पाप ३. निधि ४. मान (अहंकार) रूपी पर्वत पर चढ़े हुए। ५. विषय–वासना रूपी विष को उतार दिया । ६. वाद–विवाद करके ताड़े हैं (अपमानित किये हैं) ।

७. विकार रहित होकर ८. नष्ट होना ९. विषय–वासनाओं से हट कर मन लग जाता है । १०. उल्टे होकर । ११. कठोर बंधनों के वशीभूत । १२. उनको काट कर । १३.. ज्ञान का जहाज़ देकर अनेकों को तार दिया । १४. मोह के ताले खोल दिये (मोह दूर कर दिया) । १५. पाखंडियों को प्रचंड होकर ताडा । १६. नेत्रों की पुतलियों से देख कर इतने असंख्य लोगों को पार किया, जितने आकाश में तारे हैं ।

(गुरु अंगददेव जी)

बंद न होति सुने उपदेश, रिदे बसि जांहि करे अभिनंदन ।
नंदन फेरू[१] सुछंद[२] बिलंद बिलोचन सुंदरता अरबिंदन ।
बिंदु न मंद बिकार रहै तम ब्रिंद दिनिंद मनिंद निकंदन[३] ।
कंद[४] अनंद मुकंद भजो गुर अंगद चंद सदा करि बंदन ॥६॥

(गुरु अमरदास जी)

अमर[५] अलंब करि जांहि, समर जै पावहिं अरि हरि[६] ।
हरि नित लावहि ध्यान, ग्यान पावहिं मुनि उर धरि ।
धरन भजन बिदताइ सभिनि महिं ब्याप्यो समसर[७] ।
शरन दास गति लहति चहति दोखिन को दरि[८] ।

(गुरु रामदास जी)

हरता बिघनान अघ[९] को उर आतम ग्यान प्रकाशति ज्यों हरि ।
हरि देति बसाइ सु दासन को कमलासन[१०] ध्यावति जांहि भजे हरि ।
हरिबंस बिखे अवातर भए हति रावण को लिय संग चमू[११] हरि ।
हरिदास तनै रमदास गुरु म्रिगमोह[१२] संहारति ज्यों बड़ केहरि ॥११॥

---

१. फेरु के पुत्र–अंगद देव जी । २. स्वतन्त्र । ३. दूर करने वाले–(जिस ओर वे नेत्र करते हैं, वहां जरा भी विकार–अज्ञान नहीं रहता, वह उसी तरह दूर हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार । ४. फल, मेघ, बादल । ५. देवता । ६. देवता भी जिसका (गुर अमरदाव का) सहारा लेकर युद्ध में शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त करते हैं । ७. समान रूप से । ८. दुखों के डर को जला देना है, दोषों का नाश करना । ९. पाप । १०. ब्रह्मा । ११. सेना । १२. मोह पी ।

(गुरु अर्जुन देव)

अरजनि[१] सुनति सु दासन को दान देति,
मोह को बिदारिबे[२] को बाक सर अरजन[३] ।
अरजुन जसु बिसतीरन[४] संतोख सिंह ।
जहां कहां जानीअति मानो तरु अरजन[५] ।
अरिजन[६] भए गन मोख पद लए तिन,
श्यामघन तन होइ तोरे जमलारजन[७] ।
अरज[८] न जान्यो जाइ केतो है बिथार तेरो,
ऐसो रुप धारि आइ राजैं गुर अरजन ॥१२॥

(गुरु हरगोबिंद जी)

बोध महिं बिदेह[९], जुद्ध[१०] क्रुद्ध मद्ध रामचंद,
सिक्ख तारिबे को भव सिंधु ते जहाज़ हैं ।
करुणा निधान ते बिशनु परमान मन,
कीरति प्रकाशबे को सोइ दिजराज[११] हैं ।
प्रगट प्रताप मैं प्रचंड मारतंड[१२] बड़े,
शोभा सभि लैबे कउ सुहाइं सुरराज हैं ।
धीरज धरन को धरनि रूप बीर बर,
श्री हरिगोबिन्द सुखकंद ह्वै बिराज हैं । (रा. ६ : १ : ८)

---

१. अरज़ (प्रार्थना) २. मार देने को (नष्ट करना) ३. अर्जुन के तीर समान । ४. उज्ज्वल यश का विस्तार करने वाला । ५. भाव कल्पवृक्ष से है । ६. जो शत्रु भी आप के दास बने । ७. कुबेर के दो पुत्र मणिग्रीव और नलकुबेर नारद के शाप से वृक्ष बन गए थे, और यशोदा के आंगन में खड़े थे । एक बार यशोदा ने कृष्ण को इनसे बांध दिया तो कृष्ण ने उन्हें खींच कर तोड़ दिया और उनका उद्धार किया । ८. अरज़–चौड़ापन, विस्तार । ९. ज्ञान में विदेह (जनक) समान हैं । १०. युद्ध में । ११. चन्द्रमा । १२. सूर्य ।

सारंग[१] पै कवि सारंग[२] पै चढि, सारंग[३] शत्रुनि को बलि सारंग[४] ।
सारंग[५] ज्यों जग मैं कुल सारंग[६] सारंग[७] ग्यान प्रकाशनि सारंग[८] ।
सारंग[९] दासनि को प्रिय सारंग[१०] सारंग[११] दोशनि को सम सारंग[१२]।
सारंग[१३] पानि भयो नर सारंग[१४], सारंग[१५] श्री हरि गोबिंद सारंग[१६]।

(एन: २ : ३६ : २२)

(गुरु हरिराई)

देव तरोवर है न इहै, हरिराइ गुरूकरि देव तरोवर ।
सो सुरधेनु नही मन जानिये, सेव गुरूसुर धेनु लहै नर ।
है न चिंतामणि बूझ जि देखिये, श्री गुरु के चिंतमणी बर ।
सो न सुधा मधुराइ को धारति, ग्यान गिरा गुर की मधुरी तर ।

(रा. ६ : १ : ६)

(गुरु हरि कृष्ण)

क्रिशन बरतमा[१७] गुर हरि क्रिशन । कानन कलि के कलमल क्रिशन[१८] ।
नाम सरूप विशनु[१९] हरि क्रिशन । सिमरहु बंदहु ह्वै कवि क्रिशन[२०] ।
क्रिशिनि गुनन[२१] गन मनहुं क्रिसान[२२] । बंधन बंसनि बिपन[२३] क्रिसान[२४] ।
जिनके पूजक रेत क्रिसान[२५] । सो सरूप सतिगुर भगवान ।

(ऐ. २ : ३६ : १५)

---

१. हाथी । २. घोड़ा । ३. हिरण । ४. शेर । ५. कमल ॥ ६. सूर्य । ७. दीया । ८. अग्नि। ९. चातक । १०. बादल–मेघ । ११. सर्प । १२. गरूड़ । १३. धनुष । १४. ईश्वर । १५. वही रंग । १६. प्रकाश–ज्योति; श्री गुरु हरिगोबिन्द कभी हाथी पर सवार होते हैं, कभी घोड़े पर । वे शत्रु रूपी मृग के लिए सिंह के समान हैं; पर (मित्र रूपी) कमल के लिए सूर्य समान हैं; (सिक्खों के लिए) ज्ञान को ऐसे प्रकाशित करते हैं, जैसे दीपक को अग्नि; भक्तों को ऐसे प्यारे हैं जैसे चातक को बादल; पाप रूपी सर्प के लिए गरूड़ समान हैं; श्री हरि गोबिन्द ईश्वर ही हैं, जो नर रूप में धनुषधारी हैं, पर फिर भी वह वही ज्योति (ब्रह्मरूप) हैं । १७. जलती अग्नि । १८. कलियुग के पापों के काले वन (के लिए गुरु हरिकृष्ण अग्नि समान हैं) । १९. नाम तथा स्वरूप से विष्णु समान हैं । २०. (उनका स्मरण करने से कभी) हानि नहीं होगी । २१. गुणों रूपी खेती के । २२. राहक (रखवाले) । २३. बंधन रूपी बांसों के वन के लिए । २४. अग्नि । २५. शिव ।

(गुरु तेग बहादुर जी)

मानस तीर मराल[१] बिराजति त्यों सिख श्री गुरु तेग बहादुर ।
मानस मैं धरि ध्यान नमो करि, राखबि धरम बिसाल बहादुर ।
मानस दाहिन जे बिधि दाहिन[२], दाहिन दोशन होति सु हादर ।
मान सही जिम सीख कही सतिनाम भजो मिलि संत महादर[३] ।

(रा. २ : १ : ६)

हिंदु लाज राखी बनि चादर । तुरक जुवासा[४] को बड़ बादर ।
सिख सिमरति जितकित हुइ हादर । नमो चरन गुर तेगबहादुर ।

(रा. ५ : १ : १२)

(गुरु गोबिन्द सिंह)

भीर परे धीर दे सथंभ जैसे महां बीर,
रच्छक जंनों के मिले दुखद समाज के ।
एक संग बिघन तरंग चै उतंग[५] ऊठै,
तहां गुरूआनि बनैं केवट[६] जहाज के ।
सागर गंभीर पर प्रेम ते अछोभ नहिं[७],
भनति संतोखसिंह गुन महाराज के ।
द्वैया[८] राज ताज के ब्रिधैया[९] सुख साज के,
रखैया दास लाज के करैया कवि काज के ॥१६॥

१. मानसरोवर तट पर हंस । २. जिन मनुष्यों का वे पक्ष लेते हैं ब्रह्मा भी उनकी ओर हो जाता है । ३. संतसंगति का ऊंचा द्वार । ४. जो वर्षा होने पर गल जाता है । ५. ऊँचे-ऊँचे । ६.॥ नाविक, मल्लाह । ७. आप समुद्र की भांति गंभीर हैं परन्तु जैसे समुद्र परपीड़ा से दुखी नहीं होता, वैसे आप नहीं हैं, (आप दूसरों की पीड़ा देखकर पसीजने वाले हैं) । ८. दाता । ९. वृद्धि करने वाले ।

(गुरु सिक्ख)

बान जिस लच्छ[1] पर, बीर भद्र[2] दच्छ पर[3]
नदी मध मच्छ पर[4] दास जालपान है[5]।
शेर जिस भच्छ पर[6], बाज जिम पच्छ[7] पर,
चंडि बिडा लच्छ[8] पर कीन दुति हान[9] है ।
राम[10] छितपाल पर[11], राम[12] सुरसाल पर[13]
राम[14] मवपाल पर[15] जैसे सावधान है ।
शक्र[16] जिम कोह[17] पर चक्र[18] हरि द्रोह[19] पर,
गुरु सिक्ख मोह पर[20] तैसे बलवान है । १ ।

---

१. लक्ष्य पर—निशान पर । २. शिव का एक गण । ३. पार्वती का पिता, दक्ष । ४. नदी में मछली पर । ५. जाल डालने वाला दास, मछेरा । ६. भक्ष्य—खाने योग्य पशु आदि । ७. पक्षी । ८. एक राक्षस का नाम, बिल्ले जैसी आखों वाला राक्षस । ९. सुन्दरता का नाश करना, मारना । १०. परशुराम । ११. राजे, पौराणिक आख्यानों के अनुसार परशुराम ने धरा को क्षत्रिय—राजाओं से हीन किया था । १२. रामचन्द्र । १३. देवताओं को सताने वाला., रावण । १४. बलराम । १५. मगध देश का राजा, जरासंध । १६. इन्द्र । १७. पहाड़ । १८. (भगवान् विष्णु का) सुदर्शन चक्र (जो शत्रुओं का नाश करता है) । १९. हरि—द्रोह—विष्णु चक्र के साथ भी लगाया जा सकता है—हरि चक्र—विष्णु का चक्र । तब द्रोही का अर्थ होगा—दुष्ट । २०. गुरु सिक्ख—संत मोह पर उसी तरह काबू पा लेते हैं ।

(ब्रह्म का दिव्य सगुण रूप)

कर कमलन महिं शसत्र सुहाए । जिहहिं बिलोकति शत्रु पलाए ।
चार भुजा सोहति अति चारू। उनत सिकंध ब्रिखभ अनुहारू।। ३० ।।
पीत बसन जिन पर अति सोहैं । तडिता की छवि को जो मौहैं ।
उर पर बनी ललित बनमाला । कंबु ग्रीवि त्रै रेख बिसाला ।। ३१ ।।
चार चिबुक उपमान बिशेखी । सो जानहि जिन नैनहु देखी ।
अति सुंदर म्रिदु बोल, कपोला । मंद–मंद मुशक्यान अमोला ।। ३२ ।।
कोटि मयंकन सम मुख मंडल । मकराक्रित सोहति श्रुत कुंडल ।
उतपल दल परफुल्लित लोचन । भगतन केर ताप त्रै मोचन ।। ३३ ।।
क्रिपा भरी बहु चारु चितौनं । बांकी कोर महां सुख, भौनं ।
मेचक कच कुंतल घुंघरारे । मधुपन की दुति जिन पिखि हारे ।। ३४ ।।
भाल बिसाल किरीट सुहावा । छत्र चंद्रमा देखि लजावा ।
चौर दुरति चहुं दिश ते चारू। मनहुं भानु कर प्रभा अपारू।। ३५ ।।
महिमा तिह कहि कौन सकाई । कोटि शेष सारद सकुचाई ।
नेति नेति जिह बेद पुकारा । सभि कवि कोविद लहति न पारा ।। ३६ ।।

(गुरु नानक प्रकाश पर्वाद्ध, अध्याय ७३)

(शिव का रूप वर्णन)

नंद सु ब्रिखभ चढे शिव जू तन उज्जल इंद्र शशांक सुहाए ।
ब्याल कराल अलंक्रित हैं, हरिखाल बिसाल सिकंधन पाए ।
गंग तरंग अमंकन भंग, जटा महिं, पारबती अंग लाए ।
सूल धरे कर, मुंड परे गर, प्रेम करे उर सो चलि आए ।। ४२ ।।
संग पंचानन तात खडानन है, दुरदानन, शोभ बढाए ।

ब्रिंद बडे गण साथ विराजति देखि सरूप सभै हरखाए ।
जै सुखदाइक जै सुर नाइक जै इठपायक वाक अलाए ।
बंद उभै कर बंदति हैं बहु फूलन की बरखा बरखाए ॥ ४३ ॥
हंस चढे चतुरानन, नारद, सारद, बुद्धि बिशारद आए ।
प्रेम भरे उर, बेन बजावति, सनक सनंद रिदै हरखाए ।
कौसक, भ्रिंग, बशिशट मुनी, अंगरा सु पुलसत महां सुख पाए ।
अत्र, अगसत, परासुर व्यास सभै दरशंन गुरू सुख पाए ॥ ४४ ॥
निज सरूप तबि श्री प्रभु धारा । चरन कोकनद शुभति अपारा ।
नूपरि मणिमय रुचिर सुहाए । द्वै जंघां कदली छबि पाए ॥ ५० ॥
छुद्र घंटका बंधी सुहावति । उदर सत्रिवली शोभ बढावति ।
कालिंद्री आवरति सु नाभा । भुजा चार युत भूखन आभा ॥ ५१ ॥
संख चक्र कर कमलन मांही । गदा पदम अति सुंदर आही ।
कंकन अंगइ मणि गचिकारी । ब्रिखभ समान कंध द्वै भारी ॥ ५२ ॥
उर आयुत बनमाल सुहावा । अधिक कौसुभ मणि छबि पावा ।
कंबु ग्रीव त्रै रेख बिराजति । बदन बिलोकि चंद्रमा लाजति ॥ ५३ ॥
चिबुक चारु, मुसक्यान कपोला । हास म्रिदुल छवि होति अमोला ।
चमक दसन की रुचिर बिराजी । संपट बिद्रम हीरन राजी ॥ ५४ ॥
उनत नासका, कानन कुंडल । शोभ सुखदा अति सुखमंडल ।
मनहुं कमल दल सुंदर लोचन । क्रिपा भरी चितवन दुख मोचन ॥ ५५ ॥
धनुख भ्रिकुटी मसकत चारू। सिर करीट जिह प्रभा अपारू।
श्याम बरन, जलधर की न्याई । बसन पीत जनु छटा सुहाई ॥ ५६ ॥
अपनो पलटि सरूप क्रिपाला । चढे बिवान ऊपर ततकाला ।
तिह छिन दोनों सुत चलि आए । सुनत रोर हिरदे बिसमाए ॥ ५७ ॥

(गुरु नानक प्रकाश)

(गुरू-महिमा)

बीच बिराजहिं सतिगुर वैसे, सभि ग्रह में सूरज जैसे ।
निसा अविद्या निकट न आवै निंदक तसकर देखि पलावै ॥ ३ ॥
पेचक बेमुख अंधे रहे, नहीं प्रकाश महातम लहै ।
संत कमल विकसे हरखाए, अलि जग्यासी जंहि मंडराए ॥ ४ ॥
मति बहु रीति उड़ग जग माहीं, परम प्रकाश सु पावति नाहीं ।
कैरव कानन गन दुरचारी सभी मुरझाइ रहे तिस बारी ॥ ५ ॥

× × ×

अचरज चरित्र गुरु के महां । दीपक जरे तेल नहिं जहां ॥ ३१ ॥
सिकता मंहि ते तेल निकासहिं । सिकता को जल करि त्रिपतासहिं ।
जल पर पावक परम प्रजारहिं । पावक चंद्र सद्रिश करि डारहिं ॥ ३२॥
चंद दिनिंद मनिंद बनावहिं । छिति पर आन दिनिंद छुवावहिं ।
छिति को वायु समान चलावहिं । वायु को सम मेरु टिकावहिं ॥ ३३ ॥
मेरूधूर कर करहिं उडावंहि । धूलि कन को सैल बनावहिं ।
सैल तुंग थल गरत देहिं करि, गरत गिरे को देहिं सरग बर ॥ ३४ ॥
सुरग देव आवग्यक होइ, गेरहि नरक न बिलमहिं कोइ ।
नरक जातना जीव जु सहै, गुर करूणा ते मुकति सु लहै ॥ ३५ ॥
विधि प्रपंच मिरजाद बिगारहिं, बिगरे की मिरजाद सुधारहिं ।
अचल चलावैं, चलत थिरावैं, राउ रंक रंक राउ बनावैं ॥ ३६ ॥

× × × (गुः प्रः सूः राः १ : ६३)

चंद्रमा बदन वारी, उज्जल रदन[१] वारी,
बिघन कदन वारी[२], दाती है शरन की ।
चंपक वरन वारी, कविता वरन वारी[३] ।
सुशट बरन[४] वारी उर में धरनि की ।

१. दांत । २. काटने वाली । ३. वर्णन करने वाली । ४. श्रेष्ठ-गुण, वर, कीर्ति ।

कुंडल करनि वारी[१], सुमति करनि वारी,
कमल करनि[२] वारी, गती है करिनि[३] की ।
लोचन हरन वारी[४], दरनि अरिनि वारी[५],
दोशनि हरिनि वारी, महिमा चरन की ।(रा. ८ : १ : २)

(चण्डी)

बलवंड[६] बडे भुजदंड प्रचंड[७] अखंड अदंड[८] करे खल[९] खंडा[१०] ।
रनमंड उमंड[११] घमंडित चंडि[१२] अखंडल[१३] के अरि[१४] कीन बिहंडा[१५] ।
कर[१६] हेरि[१७] कुवंडह[१८] तुंडह[१९] पंडु[२०] भगे जस मंडन भा[२१] ब्रह्मण्डा।
सिधिदा निधिदा रिधिदा बुधिदा[२२] जुध मद्ध सहाइ[२३] सदा भव मंडा[२४] ।

---

१. कानों में कुंडल धारण करने वाली । २. हाथों वाली । ३. हाथियों जैसी । ४. हिरन जैसे नेत्रों वाली । ५. वैरियों को नष्ट करने वाली । ६. बलवान् ७. तेज वाले । ८. जिन्हें दंडित न किया जा सके, निर्भय । ९. दुष्ट । १०. (एसों को भी) खंडित किया, विनष्ट किया । ११. उत्साह के साथ रण साजकर । १२. गर्व के साथ, घमंड में आकर । १३. इन्द्र । १४. शत्रु । १५. मारना, संहार करना, टुकड़े–टुकड़े करना । १६. हाथ । १७. देखकर । १८. धनुष । १९. मुंह । २०. पीला (मुंह पीला पड़ गया, भयभीत हो गए) । २१. यश फैला हुआ है । २२. सिद्ध, निधि, रिद्धि, बुद्धि को देने वाली । २३. युद्ध में सहायक होने वाली । २४. संसार में शोभित ।

(विनय–पद)

सीर न सुसंग मैं कुसंग संतोखसिंह
रम्यो नित पापनि सों, मिल्यो कबि धीर ना ।
धीर ना धरति काम लंपट कठोर कूर,
बोर्यिो मैं बिकारन मैं भयो मन तीर ना ।
तीर ना पछान्यो तुमै, दूर करि जान्यो प्रभु,
आपने उधार की बिचारी ततबीर ना ।
बीर ना भगत, भेख धारी हित नारी
जिम राखी पैज मेरी हेरो तकसीर ना ।

× × × (गु. प्र. सू. रि. २ : ५ : ४४)

तो सो नहीं दाता कोऊ, मोसो न भिखारी दीन,
तोसो न दयालु, दुखी मोसो न अलाईए ।
मोसो नही क्रितधन, तोसो उपकारी नांही,
मोसो न अनाथ, नाथ तोसो न बताईए ।
औगुण न मोसो कोऊ, गुनवान तोसो नहीं,
जप तप ब्रत मो मैं एक नहिं पाईऐ ।
कवि आयो है शरन गहे धाइ कै चरन,
गुरू तारण तरन निज हाथ दै बचाईए ।।

(गुः नानक प्रकाश पूः १/२७)

(गुरु प्रताप सूरज, ग्रंथ रूपक)

इहठां द्वादश पूरनि राशि । जिम रवि बरतहि बारहिं मास ।। २२ ।।
तिम सतिगुरु को महिद प्रकाश । बरन्यो बर बिच द्वादश रासि ।
एक रासि जिम सूरज चले । बहुर दूसरी गमनति मिले ।। २३ ।।
तिम गस्ता रथ पर असवार । उदे जगत, विनस्यो अंधकार ।
गिरा संमूह रिशम जिन केरी । सिक्खी आतप दिपहि बडेरी ।। २४ ।।
ब्रहम ग्यान जिन तेज बिलंद । भगति सु गति के बसी मुकंद ।
हिन्दू तुरकनि पंथ अनेक । कहैं कहां लगि उडनि बिबेक ।। २५ ।।
गन को चमतकार छपि गयो । गुर प्रताप सभि ऊपर भयो ।
प्रेमी संत महंत अनंत । इह पंकज जित कित विकसंति ।। २६ ।।

इम सूरज श्री सतिगुर उदे । तम अग्यान समीप न कदे ।
करामति जुति अनिक अनंदे । नाना बरन खिरे अरबिंदे ॥ ३१ ॥
गन जग्यासी भौरं लुभाए । महिद प्रेम मकरंदहि पाए ।
सिक्खी बहु सुगंधता भई । सगरे जगत पसर करि गई ॥ ३२ ॥
सतिनाम सिमरन शुभ सार । जहिं कहिं भयो प्रकाश उदार ।
जिसको पाइ सुखी जग भयो । सभि महिं सुजसु गुरनि को थियो ॥ ३३॥
(गुः प्रः सूः राः १२ : ६८)

श्री गुर की गाथा शुभ गंगा । छंद उमंग उतंग तरंगा ।
करामात बरनन जहिं कहां । इहु गंभीरता धारति महां ॥ २२ ॥
राम कुइर गिरवर ते निकसी । सिक्खन बिखे जगत महिं बिगसी ।
जोग विराग भगति अरु ग्यान । बसहिं चार जल जंतु महान ॥ २३ ॥
जप तप संजम दान शनान । धीरज दया छिमा निरमान ।
सति संतोख आदि गुन जेते । लघु जल जंतु वास करि तेते ॥ २४ ॥
इस गुर दसहुं घाट को पाइ । पावन भए लोक समुदाई ।
जनम मरन ते आदि कलेशू । इह बड़ पातक हते अशेशू ॥ २५ ॥
(गु. प्र. सू. ऐन २ अं. ३६)

आध्यात्मिक विचार

(ब्रह्म)

सति चेतन आनंद इक असति भांति प्रिय पूर[१] ।
नभ सम सभि महिं, शुभ करन गन मंगल को मूर[२] ।(राः ६ : १ : २)
माया से सवल जु भयो, जिति किति व्यापि समान ।
सार असार संसार करि सचिदानंद महान । (रा. ७ : १ : १)
सति चित अनंद प्रमात्मा सभि जीवन को जीव ।
सदा शांति, नभ सम रव्यों, सरव शकति को सीव[३]। (राः १० : १ : २)
सति चित अनंद समान इक निरगुन सरगुन माहिं ।
ग्यानादिक्क गुन ईश के जीव बिखै इह नाहिं ।(रा. ११ : १ : १)

१. अस्ति, भांति और प्रिय रूप होकर सब में व्याप्त हैं । २. मंगल का मूल । ३. शक्ति की सीमा, अतुल शक्ति वाला ।

पारब्रह्म परमातमा व्यापक सकल समान ।
सभि अलंब प्रेरक, प्रभु, बिदतहु रिदे महान । (रा. १२ : १ : १)
करता जग केर सुरासर को निस दयोस[१] चराचर को भरता ।
भरता सभि को परमेश्वर पूरन दास बिनै नित आचारता[२] ।
चरिता[३] जिसके न लखे पर हैं मुनि शेश गिरा कहि अच्छरता[४] ।
छरता मति को[५] लखि चातुरता तजि आतुरता गहि सकरता[६] ।
(रा. ३ : १ : २)

चौपई

पार ब्रह्म पूरन करतारा । परमेशुर जगतेश उदारा ।
दीन बंधु प्रिय सिक्खन केरा । प्रभु हरि व्यापक जहिं कहिं हेरा ।। ३२।।

(जगत)

देखहु जग सनेहु की चाली । इक दिन भरे, एक दिन खाली ।
कबहुं हरे, शुशक कबि जावहिं । कबहुं जनम कबहुं बिनसावहिं ।। ७।।
कबि मेला, कबि बिरहि दुहेला[७] । कबि संकट कबि होत सुहेला[८] ।
सदा प्रणामवंति[९] जग अहै । नहीं एक रस थिरता गहै ।। ८ ।।
(रा: ७. २३)

(माया)

छादि लेति चहूं ओरन माहिं । जिस ते द्रिशटि परति है नाहिं ।
तथा ब्रह्म को माया जानि । आश्रै विशै करति बुधिवान ।। ४४ ।।
जबि अग्यान[१०] सकारज सारे । भ्रम छुट जाइ सरूप निहारे ।
परम तत्त को मति करि जाना । ऐकंकार महत महीयाना ।। ४५ ।।
(रा. २ : ३५)
साच झूठ किछु कही न जाइ । तिह कारज इह जग तिस भाइ ।
माया को आख्य अग्यान[११] । इस को रूप न निज को जाना ।। ३६ ।।

१. रात-दिन । २. अनुकूल, सफल करने वाला । ३. चरित्र । ४. नाश रहित । ५. सारी बुद्धि को मात कर देने वाला । ६. नम्रता । ७. विरह-दुख । ८. सुख । ९. परिवर्तनशील । १०. अज्ञान ने रस्सी के आश्रय को ग्रहण कर सर्प रूपी महान कार्य कर दिया है । ११. अज्ञान भी ब्रह्म के आसरे है और ब्रह्म को ही विषय बनाता है । यहां रज्जू में सर्प का दृष्टान्त देकर यह कहा गया है कि अज्ञान का कार्य प्रपंच है इसलिये अज्ञान और उसका कार्य प्रपंच भ्रम के कारण है, जब आत्म-ज्ञान से भ्रम दूर हो जाता है तो अज्ञान और उसका कार्य प्रपंच कल्पित लगने लगता है ।

(जीव)

सत्ति आतमा निरनै करहि । पूरब हुतो[1], देहि बहु धरहि ।
अबि प्रतक्ख[2] अरु रहै भविक्ख[3] । यां ते सत्ति लखहि गुरु सिक्ख ॥ ५१॥
बहुर आतमा चेतन जानहिं । जिह सबंध तन चेतन ठानहिं ।
फरकावन चख आदिन रिखीके[4] । जिस बिन होति नहीं लखि नीके ॥ ५२॥
पुन आतम को रूप अनंद । परखति भले सदा बिन दुंद ।
बिशियन बिखै अनंद कलपंता । इहु मम रूप न अग्य लखंता[5] ॥ ५३ ॥
परम हंस सो कहीअहि रूप । सति चेतन आनंद अनूप ।
तन ते न्यारो जानहिं ऐसे । मंदिर विखै बसहि को जैसे ॥ ५४ ॥
तिस को अपनो रूप पछानहि । तन हंता[6] निरनै करि हानहि ।
सम मंदिर के जानहि न्यारो । जीरण होए त्याग पधारो । ५५ ॥
तन आतम समसर पय पानी । करहि जु नर हुए हंस समानी ।
तिन को परमहंस है नामू । पावहिं ब्रह्म ग्यान अभिरामू ॥ ५६ ॥
सो तौ म्रितक जानि ही लीजै । इस हित चित नहि संसा कीजै ।
आतंम सदा साच ही जानो । किस को मार्यो मरहि न मानो ॥ ५ ॥
पावक दाह करति नहीं तिसै । जल न दुबाइ सकहि निज बिसै ।
शसत्रनि ते नहिं छेद्यो[7] जाइ । जिसि को पौन न सकइ उडाइ ॥ ६ ॥
काल बिनाशन सभिनि बिसाला । आतम अहै काल को काला ।

× × × (रा. १ : १२)

शुद्ध सतोगुन माया माहिं । ब्रह्म प्रतिबिंब सु ईश्वर आहि ।
मलिन अविद्या तम गुण बिखै । ब्रह्म प्रतिबिंव जीव तिह पिखै ॥ ४५ ॥
ईशुर महिं षट गुन को जानि । जांते कहीअति है भगवान ।
षट बिकार जुत जीव रहंति । भिन्न भिन्न सुनि सभि बिरतंत ॥ ४६ ॥
जसु, ऐश्वरज, विराग, उदार । लछमी ग्यान सु पूरन धारि ।
षट बिकार जनमनि अरु मरने । इह सरीर के दोनहु बरने ॥ ४७ ॥
छुधा[8], त्रिखा[9], दुइ प्राननि केर । हरष, शोक मन के जुग हेरि ।
साखी रूप ब्रह्म निरलेप । मुकति होति लखि बिना विखेप ॥ ४८ ॥

(रा. ५ : ४६)

---

१. पहले २. अब है । ३. और भविष्य में रहेगी । ४. आंख आदि इन्द्रियों का फड़कना । ५. विषयों में आनन्द की कल्पना करता है, जो कि झूठा है । 'यह मेरा रूप नहीं है' अज्ञानी यह नहीं समझता। ६. अहंकार । ७. काटा जाना । ८. भूख । ९. प्यास ।

(ज्ञान, विराग, योग, भक्ति का स्वरूप तथा महिमा और भक्ति की श्रेष्ठता)

श्री अंगद उपदेश बतायो । करहु भगति जे इमि उर भायो ।
'कहिन लगे' हम भगति न जानहि । किम सरूप कैसे करि ठानहिं ॥ २२॥
श्री गुर बरनन कीन सिखाई । ब्रह्म सबल माया जग जाई ।
हुकम परमेशुर को तिन पायो । अपने महिं सभि जग भरमायो ॥ २३ ॥
बहुर प्रभु ने चतरं उपाए[१] । जिन ते मिलहि मोहि कहु आए ।
इक बैराग जोग अरु ग्यान । चउथी उपजी भगति महान ॥ २४ ॥
ग्यान, बिराग, जोग शुभ तीन । पुरुष रूप इनको मन चीन ।
माया ले इन को भरमाई । बड़े जतन ते उबर्यो जाइ ॥ २५ ॥
भगति अहै पतिव्रता नारी । इस पर नहिं माया बलु भारी ।
इसत्री को इसत्री न भ्रमावै[२] । धरहि भगति तिस प्रभु मिलावै ॥ २६ ॥
तबि श्री अंगद बहुर उचारा । इक बिराग है उभै प्रकारा ।
इक मन को इक तन को होति । बडि भागनि के रिदै उदोति । २९ ॥
सकल पदारथ त्यागन करै । धन, बनिता, सुत सभि परहरे[३] ।
हठि करि बाहरि को[४] तजि देति । रहै[५] वाशना रिदे निकेति[६] ॥ ३० ॥
दूसर ब्रह्म लोक लौ सारे । बाइस विशटा[७] सम निरधारे ।
रिदे वाशना क्यों हूं न धरै । सुपनि समान जानि परहरै ॥ ३१ ॥
पाइ पदारध परालबध ते । भोगति हैं पर मन नहिं बंधते ।
निज सरूप दिशि ब्रिति लगावैं । बिशय बाशना ते उलटावै ॥ ३२ ॥
तथा जोग भी दोइ प्रकार । इक तौ कशट जोग उरधारि ।
यम नेमादि अशट हैं अंग । सकल कहे बहु वधे प्रसंग ॥ ३३ ॥
दूसर रूप सुनहु तिस भेत । रोक वाशना ते मन लेति ।
सतिगुर शबद सदीव विचारै । जीव ब्रह्म इकता निरधारै ॥ ३४ ॥

---

१. उत्पन्न किए । २. भ्रम में नहीं डाल सकती–मोहित नहीं कर सकती । ३. त्याग दे । ४. बाह्य पदार्थ । ५. टिकी रहतीं हैं । ६. घर रूपी हृदय में । ७. वायस (कौवे) की विस्टा (बीठ) के समान ।

वाहिगुरूजबि निसि दिन जापति । चारहूं द्वार होइ तबि प्रापति ।
जिनि दर अंदर हुइ प्रविसाइ[१] । मिलहि जाइ करि पद को पाइ ॥ ६ ॥
जिमि हरिमंदर के दर चार । जिस दर बरहि सु तिसहि उदार ।
जोग, विराग, भगति अरु ग्यान । सिमरे नाम आई चहु पान ॥ ७ ॥
ब्रित्ति इकागर करि अभिराम । प्रेम सहत सिमरे सतिनाम ।
तबि फल जोग करे को पावै । सिमरन करि तिस मन टिक जावै ॥ ८ ॥
तबि बिशियनि ते लहै विराग । मूल–भगति को सिमरनि लागि ।
प्रभु महिं प्रेम महां उपजायो । निस दिन मन मैं एक बसायो ॥ ९ ॥
क्रिपा करहि जिस महिं लिवलाई । रिदे पुनहि दे ग्यान उपाई ।
एक आतमा पूरन जानहि । निज सरूप लखि बंधन हानहि[२] ॥ १० ॥
इम सतिनाम आसरै चारे । सिमरति प्रापति होवति सारे ।
यांते जे बांछहिं इन चारनि । नाम निरंतर करहिं संभारन ॥ ११ ॥

(रा. ५ : ४५)

(नाम महिमा)

सुनि श्री गुर नाम विशेशति हैं । सिख संगति को उपदेशति हैं ।
इह मंत्र महां सतिनाम अहै । निज जीह जपै जु अरोग चहै ॥ १६ ॥
तन ताप कहां इस ते जु रहै । जग तीनहु तापनि खापद है ।
मुखि धन्न जपै सतिनाम सदा । किह संकट होनि न देति कदा ॥ १७ ॥
बड भाग भरे लिव लावति हैं । दुख लोक प्रलोक नसावति हैं ।
कहिं सिक्ख्यन साथ विकार तजो । सतिनाम भजो, सतिनाम भजो ॥ १८ ॥

(रा. ३ : ३०)

नाम जपै बहु को कल्यान । नाम महातम कीन महान ॥ ४७ ॥
सरवर पर गिरवर धरि, भारे । तरुवर के पातनि सम तारे ।
लिख्यो नाम तिन पर सु जनायो । सरगुन ते वड नाम सुहायो ॥ ४९ ॥
जिन सतिनाम जप्यो करि प्रेम । अंतहिकरण विमल तिन छेम ।

---

१. मुक्ति के द्वार के अन्दर प्रवेश हो । २. सांसारिक बंधनों को तोड़ दें ।

सिमरति प्रापति आतम ग्यान । जनम मरन को बंधन हान ॥ ५० ॥
यांते निरगुण ते सतिनाम । हैव विशेष, भजि आठो जाम ।
सुनि सिक्खनि गुर संग बखाना । सागर फांध गयो हुनमाना ॥ ५१ ॥
श्री अरजन पुनि सुनति बखाना । सिमरति राम नाम हनुमाना ।
बहुर मुद्रका लई पयाना । तिस पर राम नाम सभि जाना ॥ ५३ ॥
नाम प्रताप पार परि गयो । कुछ विषाद तन होति न भयो ।
यांते नाम महातम भारो । सिमरि तरै जग सिंधु सुखारो ॥ ५४ ॥

नाम सेतु[१] पर निरबल बली । रूजी, लंगरे, सभि बिधि भली ।
सने सने परि पार सुखारे । बिना जतन, आनंद उर धारे ॥ ५६ ॥
पापी पुनी मूढ सुजान । पार परहिं करि भगति महान ।
यांते तुम सिमरहु सतिनाम । रहीअहि सतिसंगत की शाम ॥ ५८ ॥

(रा. ३ : ५५)

(सत्संगति एवं संत-सेवा)

सुनति प्रसन्न भए गुर अरजन महिमा संतनि करहिं उचार ।
शुशक[२] सथल जल पल महिं पूरे, पूरन शुशक करहिं इक वार ।
रंक राव ते, राव रंक ते, म्रितु जीवाइ[३] जिवति दें मारि ।
अचल[४] चलावहिं, चलति थिरावहिं, वाक अमिट हैं, प्रगट संसार ॥ २८ ॥

तप करिबे ते प्रापति होइ । तप की महिमा कहि सभि काइ ।
तिस को समा नहीं अबि जानहुं । निरबल प्रानी बिदत पछानहुं ॥ ३२ ॥
तिस ते सहस गुना फल पावै । जो सति संगति सेव कमावै ।
तप की महिंमा ते अधिकाई । अपर बात क्या कहैं बनाई ॥ ३३ ॥

१. नाम रूपी पुल । २. खुशक स्थल पर पल भर में जल भर देते हैं । ३. मृत को जीवित कर देते हैं । ४. जड़ ।

परोपकार

पुन्न, दान, तप, मख को करिवो होति न पर उपकार समान ।
कलमल करनि अनेकनि रीति क्रितघण के सम कोइ न जानि ।
रहनि अहिंस, धरम सभि कीने, हिंसा करे पाप पहिचान ।
याते नित चितवहि उपकारू, धन ते तन ते मन ते ठानि ॥ २३ ॥

(राः ३ : ४६)

(जाति पांति)

उर हंकारी गिरा उचारी । एको जाति हमार तुमारी ।
श्री गुर अमर भन्यो सुनि सोइ । जाति पात गुर की नहिं कोइ ॥ २० ॥
उपजहिं जे सरीर जग मांही । इनकी जाति साच सो नांही ।
बिनसि जात इहु जरजरि होइ । आगे जाति जात नहिं कोइ ॥ २१ ॥
इम श्री नानक बाक उचारा । आगे जात न जोर सिधारा ।
उपजै तन इतही बिनसंते । आगे संग न किसे चलंते ॥ २२ ॥
सिमर्यो जिन सतिनाम सदीवां । सिक्खन सेव करी मन नीवा ।
तिन की पति लेखे परि जाइ । जाति कुजाति न परखहिं काई ॥ २३ ॥

(राः १ : ४०)

(गुरु)

गुर सम अपर हितु नहिं कोई । कोट जनम के दुख हति जोइ ।
सति संतोष आदि गुन धरिकै । गुर सेवहि हंकार निवरिकै ॥ ३१ ॥
गुर सेवै नर तन सफलावै । गुर सेवा पद उचो पावै ।
गुरु बड़ो सभि विद्या दाता । चार जुगनि महिं जिन किन जाता ॥ ३२ ॥
सभि गुर महिं जो दे ब्रह्म ग्याता । सो विसाल जानहु सुखदाता ।
जिन सेवा करि गुरु रिंझाए । सगले तप जप के फल पाए ॥ ३३ ॥
गुर सेवा के सम कुछ नांहि । खोजनि करहु सकल छित मांही ।
हंकारादिक करनि बिकार । दियो जुजाति स्वरग ते टारि ॥ ३६ ॥

(रः १० : २६)

धिक जीवनि सतिगुरु बिना कुछ सरै न काजू ।
गुर बिन छिति को राज क्या धिक सुरपुरि राजू ।
तप, तीरथ, बरत रु धरम बिन गुर निफलावै ।
गुर बिन लोक प्रलोक के सुख सकल नसावैं ॥ ४१ ॥

(गुरबाणी महिमा)

सतिगुर बानी मेघ समाना । बरखै चहुंदिशि बिखै महान ।
वन के पशु पंछी सुख पावहिं । करहिं पान अरु तपत मिटावहिं ॥ २८ ॥
कूप किसू कै होइ कि नाहीं । इक सम घन ते सभि सुख पांही ।
सगरे खेती बोइ पकाइं । बिना जतन सभि ही सुख पाइं ॥ २९ ॥
त्यों सतिगुर के शबद सुखेन । पढि गति प्रापति जेन रु केन ।

(रा: १ : ४६)

(सिक्खी के आदर्श)

सुनि गुर सिक्खहु शुभ उपदेशू । धरहि कमावै तजै कलेशू ।
लखहु 'मुकतनामा' इस नामु । जिस के करति लहै गुरधाम ॥ २ ॥
सिक्ख होइ किस करज न लेवै । जे करि लेय भाव करि देवै ।
सुने न झूठ, न मुख ते कहै । संग झूठ के प्रीति न गहै ॥ ३ ॥
संतिसंगी हुइ साच कमावै । संगि साच के प्रीति बधावै ।
सच उर धरहि म्रिजादा साची । छल बिन होवै साच उबाची ॥ ४ ॥
सचि के संग जीवका जोई । तिस को करहि, दंभ बिनु होई ।
कुछक बिचार दुहन महिं अहै । सूखम भेद सुमति को लहै ॥ ५ ॥
कहे साच किसि होवै घाति । इस ते आदि विचारहु बात ।
तहां साच नहिं अंगीकारै । बनि उपकारी कार सुधारै ॥ ६ ॥
अपर जितिक जग के बिवहारे[1] । सचि के सहित करहु हित धारे ।
सिक्ख होइ किस झूठ न खावै । सिक्ख होई धन प्रेम न लावै ॥ ९ ॥
पठि जप जापु नाम गुर लेइ । 'तव प्रसादि' कहि करि अचवेइ[2] ।
नगन नाइका[3] नाहिं निहारै । त्रिय के सिमरन उर नहिं धारै ॥ ११ ॥

(रि: ३ ५०)

१. व्यवहार । २. खाए । ३. स्त्री ।

असमंजस महिं सेवक परिओ । अपनो बिरद संभारन करिओ ।
जिमि चात्रिक की प्यास विचारु । जलधर धावहि करुना धारि ।। ८ ।।
बूझि प्रेम निज बचन सम्हाला । उठि करि गमने द्याल विसाला ।
रह्यो निकटि जबि गोइंदवालू । लखि श्री अमर उठे ततकालू ।। ९ ।।
हित सनमान अगारी गए । मनहु प्रेम धरि मूरति थए ।
देखि दूर ते द्रिग जल छाए । धाइ परे चरननि लपटाए ।। १० ।।
पंकरि भुजा गर संग लगाइव । दुह दिश प्रेम अधिक उमगाइव ।
कर सों कर गहि करि पुन चले । ग्यान बिराग मनहु दो मिले ।। ११ ।।

(रा. १ : २५)

(काशीराज की गुरु–भक्ति)

गाइ सुत[1] जैसे मिल मात मन चाहि ऐसु,
कूद बिललाय, गर बंधन बसाइ ना[2] ।
जैसि तो बिगार निज धाम को पधार चाहै
जान पराधीन चितं चितवनि जाइ ना ।
जैसे बिरहनी पति संग को सनेह चाहे,
देखि कुल अंक लाज[3] संगम[4] सु पाइ ना ।
तैसि हौ शरन गुर चरनन चाह सदा,
आइसु[5] बिदेस बसि अति बिललाइ ना ।। ६१ ।।

मीन सदा जिम चाहति नीर को चात्रिक बूंद सदा मन चाहै ।
नीरज[6] चाहि सदा रवि को पुन औ नलिनी ससि देखि उमाहै ।
अग्रज ताडिति है सभिही वहु प्रीत न त्याग सदा रुचि आहै ।
तैसि प्रभु मम प्रीत रिदै तुम ताडति हो जन प्रीति वधाहै ।। ६२ ।।

(रा. ७ : ४)

---

१. बछड़ा । २. परन्तु गले में रस्सी के कारण कुछ वश नहीं । ३. कुल लज्जा का अंकुश ४. मेल । ५. आज्ञा के वश विदेश में । ६. कमल ।

गुरु जी की दिगिज्य

दिगबिजै हेत साजि बेदी कुल केत दल,
चले दंभ दलिबे कउ दलनि बिदारिया ।
भगति की केत पर प्रेम के समेत कर,
कीरति निशानो घहिरानो घन भारिया ।
ग्यान को खड्ग, धरि, जुगत कमान करि,
नाना द्रिशटांत लीन सिलीमुख धारिया ।
जहां दिढ कोट तहां करामात तोप संग,
ढांहिके मैदान कीन, मिले अरि हारिया ।
नाम को भजन नीको पहिर सनांह तन,
कोटिक तरक तरवार न करति है ।
नीवों मन राखन सिपर गहि हाथ बिखे,
क्रोध रूप बान जाको छुई न सकति है ।
धीरज संतोख सति दान इशनान मति,
दया उपकार अति श्रधा जी छकति है ।

(गुरु नानक का शिशु रूप)

लोचन अमल कमल दल जैसे । नासा तिल प्रसून नहिं वैसे ॥ ३ ॥
सुंदर अलंकार घरिवाए । बिन दूखन कै भूखन पाए ।
बनी बाजनी किंकनी चारी । कटि महिं पाई अति छबि चारी ॥ ४ ॥
कर महिं कट पद नूपर सोहै । जो देखे तिस को मन मोहैं ।
दुइ दुइ दसन अधर दुति होती । संपुट बिद्रम जिऊं जुग मोती ॥ ५ ॥
अङण महिं रिङण गति कारी । चरणांबुज खैंचति बलहारी ।
हेरति हसति हसावति औरी । किलकत मुख ते माधुर ठौरी ॥ ६ ॥
बोलै बचन तोतरे मीठे । सुनहि नारि नर लागहिं ईठे ।
हेरहि मात तात अनुरागहि । फिरति भूमिका म्रितका लागहिं ॥ ७ ॥
लगी धूर तन धूसर होए । अंब लेय अंबा अंग धोइ ॥ ८ ॥

(गुरु नानक प्रकाश)

(गुरु हरगोबिंद)

गंग अनंद सों नंदन को प्रतिपारति होइ सुचेत सदा ।
मंदर अंदर सुंदर पालना लालति लाल झुलाइ तदा ।
नारिनि ब्रिंद मैं ना कबि ल्यावति देखति डीठ लगै न कदा ।
क्षमन को करि जाइ नहीं रखवार रहो गुर रूप सदा ॥ २१ ॥

तांते[1] करे जल मज्जन को मुख चारु पखारति लालति है ।
पोंछति सूखम चीर गहे पट सुंदर फेर उढालति है ।
बाघ नखा मढि कंचन ते मखतूल[2] गरे महिं डालति है ।
यों दिन केतिक बीत गए सुत प्रेम करे प्रतिपालति है ॥ २२ ॥

श्री हरिगोबिंद सुंदर रूप अनूपम बैठने लागि तबै ।
सोच बिमोचति लोचन ते अविलोकति तेज समेत जबै ।
लेति उछंग[3] पिता गुर पूरन संगति पंगति देखि सबै ।
ज्यों अज नंदन कै रघुनंदन[4] बालक वैस महिं बैठि फबै[5] ॥ २३ ॥

1. गरम करके । २. रेशंम । ३. गोद । ४. जैसे दशरथ की (गोद में) रामचन्द्र । ५. शोभित होते हैं ।

जुग दंत सुभंति महां दुतिवंत हैं ओशट लाल बिसाल सुहाए ।
मुकता बिंब संपट बिद्रम के बिधि सुंदर ते जनु बीच टिकाए ।
मुसकावति ते दिखरावति हैं जनु अम्रित बीच भिगोए बनाए ।
कवि और बनाइ कहै उपमा जनु कीरति के जुग बीज दिखाइ ॥ २५ ॥

अंझण बीच फिरै गुडली बहु भांतिनि ते करि बालक लीला ।
खैंचति पावन पावन पंकज नूपर को रुराकाइ छबीला ।
द्वै करबंद करै अभिबंदन दोख निकंदन रूप गहीला ।
पाइ सु चारु पदारथ सेवक दे गुरदेव अतेव सुसीला ॥ २६ ॥

मानुख रूप धर्यो जग मैं जिन भूम को भार उतारन को ।
आयुध धारि महां बल सों तुरकान को तेज निवारनि को ।
सेवक संतन को सुख दे उर ग्यान की सीख सिखारनि को ।
बालक बय अबि क्रीडति हैं, करि कूर जरां सु उखारन को ॥ २७ ॥

(रा. ३ : ८)

(गुरु गोबिंद सिंह की बाल क्रीडा)

सरदूल कि तूल अभूल भए प्रतिकूल नदी गिर राजनि को[१] ।
हिंदबाइन तीरथ पावन को थिरतावन को अघ मांजन[२] को ।
सरबोतम खालसा पंथ सतेज अमेज है आप ही साजन को ।
कवि सिंह कंहै अवितार भयो हम जैसे गरीब निवाजन को ॥ २ ॥

द्वैपद सुंदर ज्यों अरविंद सु दासनि ब्रिंद को आनंद दानी ।
कोमल लाल अकार लघू अंगूरी इकसार सुभैं दुति सानी[३] ।
चिकवन चारु सु रंगि सु गोल दिपैं नख जान कही कवि बानी ।
फूल बधूप कि ऊपर ज्यों अति उज्जल हीरनि पंगति ठानी[४] ॥ ३ ॥

झीन झगा पहिरैं तन मैं गर बाघनखा[५] मढि कंचन ते ।
कंध उतंग बिलंद भुजानि बिराजति हाटक कंकन ते ।
चारु बिलोचन साथ बिलोकति भूप करे जिन रंकनि ते ।
सीस पै केस सचिकवन श्याम मुलाइम जे मखतूलन ते ॥ ५ ॥

१. पहाड़ी राजाओं रूपी नदी के प्रवाह में सिंह के समान प्रतिकूल चलना अर्थात नदी के प्रवाह को चीरना । २. नाश करने के लिए । ३. शोभा युक्त । ४. गुल दुपहरी के फूलों पर हीरों की पंक्ति लगाई हो । ५. सिंह के नारबून ।

किलकंति हसंति बिलोकति हैं चलि रिंझरा अझंरा मैं फिर आवैं ।
गुलकारि गुलाब गलीचन पै पद ऐंचति नूपर को रुराकावैं ।
अति चंचलता जुग लोचनि बीच प्रताप भर्यों बिधि यौं दरसावैं ।
जनु उज्जल पात्र बिलौर बिखै बहु निरमल रंग पर्यो झलकावैं ॥ ६ ॥

हाथ गडीरन पै धरि कै पद मंद ही मंद उठावनि लागे ।
सुंदर श्री मुख ते विकसावति शोभति दंत अमी जनु पागे ।
चंचल चारु बिलोचन ते चितवंति चहूं दिशि राग बिरागे ।
बालिक बै बपु क्रीडित है इम अंझरा मैं बिहरैं चलि आगे ॥ १७ ॥

म्रिदु बोलति, डोलति कुंडल श्रोन कपोलन झाल परै इस भांती ।
जनु पूरन शारद चंद बिखै बर मीन फिरै सुखमा बिगसाती ।
बिगसै सुनि बाति रिदै हरखाति बिलोकति मात महां उमगाती ।
जनु साधन साधति को दुखदे तिह सिद्ध मिलि हुइ सीतल छाती ॥ १५ ॥

(रा. १२ : १७)

(हरिपुर की स्त्रियों का रूप-चित्ररा)

सुंदर सरबंगन विखै तरुनी गन हेरी[१] ।
आंख कमल की पांखरी चलचाल[२] घनेरी ।
बिधु बदनी सुक्रिशोदरा[३], सुठ श्याम सुकेसी ।
गज गमनी सुर कोकला कट केहरी जैसी ॥ २१ ॥

कंठ कपोती सुंदरी, सम ओठ प्रवाला ।
जोगिन के धीरज हरैं ऐसी गन बाला ।
आन देश अवनी बिखै तिस देश समाना ।
अबला कितहूं होति नहिं अस रुचिर[४] महाना ॥ २२ ॥

(रा. १ : ३१)

(जैमल की कन्या का सौन्दर्य वर्रान)

इक जैमल तनुजा तन सुंदर । चातुरता चंचल गन मंदर ।
कमल पत्र बिसतार बिलोचन । पिखति कटाछन धीरज मोचन ॥ ९ ॥
बेनी नागन सी सटकारी[५] । मध्यदेश सूखम कुच भारी ।
गौर रंग चंपक जनु पाति । किधौं दिपति कंचन अविदात[६] ॥ १० ॥
भौर गुंजारति जिह पर वारति । सखी पास ते रहित बिडारति[७] ।
चौदहिं बरखन की बर बाला । मनहुं अधूम लाट है ज्वाला ॥ ११ ॥

(एक अन्य स्त्री का सौन्दर्य चित्रण)

गौर रंग कंचन गज गौनी । कच मेचक जनु कंद्रप छौनी ।
पीन उरोजन, खंजन नैनी । कट जिन छीन कोकला बैनी ॥ ३९ ॥
बरख चतुरदस की कहि बैसा । को खोडस की रूप सुदेशा ।
चलति होति भूखन झुनकारा । मनहु मदन को बजति नगारा ॥ ४० ॥
जिनकी चितवन बान समाना । भ्रिकुटी कुटिल धनुख परमाना ।
मनहु भूप इक कीन बहाना । आवा मदन करन पतियाना ॥ ४१ ॥
जहिं अरबिंद बिलोचनि राजति । तहिं बैसी, जिन पिख रति लाजति ।
कर कमलन सो चरन मुकंदा । चौपति भी धरि रिदे अनंदा ॥ ४२ ॥
मंद-मंद करि मुख मुसकावन । रिदे चहिति है मदन बढावन ।
करि-कटाख गुरु ओर निहारी । मधुर म्रिदुल मुख गिरा उचारी ॥ ४३ ॥
मनहु काम की बाजी बीना । जो सुर मुनि को करति अधीना ॥ ४४ ॥

१. सब अंगों में सुन्दर स्त्रियां देखीं । २. बहुत चंचल । ३. सूक्ष्म कमर वाली । ४. ऐसी सुन्दर । ५. पीछे लटकने वाली । ६. स्वच्छ सोना । ७. सखी (भौरों को) उड़ाती रहती हो ।

(युद्ध वर्णन)

यो चहूं ओर ते मार मची तुरकानि के ढेर लगे मरिकै ।
श्री हरिगोबिंद तीरनि ते बहु वीर सरीर परे थरकैं[१] ।
बेधति पार परैं असु कै नर ना अटकैं खपरे बरि कै ।
बेधन को करि कै सरकैं पिखि कातुर ही धरकैं डरि[२] कै ॥ २२ ॥

श्री हरिगोबिंद बीर बहादुर पंनग के सम बान चलावैं।
ब्रिंद प्रहारति शत्रुनि डारति, छूछ निखंग ह्वै और मंगावैं ।
लाघवता करि छोरति हैं इकसार ही सार[३] महां बरखावैं ।
एक को बेधति द्वै पुन तीनहु चार कि पंच छठों सु गिरावैं ॥ २३ ॥

दल जे दिलेश[४] अचलेश[५] दोउ मिलि धाए,
धुरवा से[६] धौंसा की धुंकार उठे घोरि घोरि[७] ।
बांधे बड़े ठट्ट भट्ट घट्ट के संघट्ट जुट[८],
लोहि[९] की चमक छटा छबि भांत कोरि कोरि[१०] ।
गोरे परे ओरे धूम अधिक अंधेरो धूर,
हलके हरौल[११] हला हली[१२] उठै ठौरि ठौरि ।
तौ लौ ही बनाउ श्री गुबिंदसिंह राउ जौ लौ,
छोरे न समीर तीर जेहि[१३] माहिं जोरि जोरि[१४] ।

(रा. ६ : १ : १३)

यौं कहि पीस के दांत परे गुरु ऊपर एक ही बारि घने ।
होति भए थिर थंभ मनो गन छोरति बान को कोप सने ।
अग्र जु आवति तां उथलावित ज्यों बड़ गाज मुनारे हने ।
कान प्रमान लौ[१५] तानि चलावति मारे अनेक ही कौन गिने ।

(रा. ६ : ११ : २८)

१. कांपते हैं । २. कायरों के हृदय धड़कते हैं । ३. लोहा–(शस्त्र) । ४. दिल्लीपति–औरंगजेब । ५. पहाड़ी राजा । ६. बादल जैसे । ७. भयानक । ८. बड़े ठाट बांधकर बादल की तरह योद्धाओं का दल इकट्ठा होकर । ९. शस्त्र । १०. करोड़ों करोड़ों; बिजली की चमक चारों ओर से, कभी इधर से कभी उधर से उठती है । ११. सेना का अग्रभाग–आगे चलने वाला भाग, (हरावल) १२. हलचल, शोरगुल । १३. चिल्ला । (फारसी–जिह) । १४. जोड़–जोड़ कर । १५. कान तक खींच कर ।

कटे शत्रु अंगा । किसु सीस भंगा ।
कट्यो हाथ काहूं । गिरै भूम माहूं ॥ २६ ॥
किसू जंघ काटैं । असी श्रोरा चाटैं ।
कटे कंध कां के[1] । करे दोइ फांके[2] ॥ २७ ॥
तुरंगान भंगा । चढैं खग्ग संगा ।
भए रुंड मुंडा । कटे कांहु तुंडा ॥ २८ ॥
प्रचंडैं घुमंडैं । करे खंड खंडैं ।
पिछारी[3] तमांचा । हत्यो बीर राचा[4] ॥ २९ ॥
खरे सावधाने । जबै शत्रु जाने ।
हतैं ताहिं गोरी । कि खग्ग सजोरी[5] ॥ ३३ ॥

कंठ कद्यो किह, भुजा तुंड किह, सिर पर बजी कांहि करवार ।
कुछक अरे पुन भाजि परे तहिं, किसने त्याग दीनि हथ्यार ।
को कर जोरति खरो निहोरति, 'गुरु दुहाई' कांहि उचार ।
दीन भए त्रिण दांतनि गहि करि इस बिधि केतिक प्रान उबारि ॥ ४ ॥

तुफंग छोरि छोरि कै । खतंग चांप जोरि कै ।
प्रहारि शत्रु गेरते । परे बिहाल टेरते ॥ २९ ॥
तुरंग अंग भंग ह्वै । गिरंति सूर संग ह्वै[6] ।
तजंति फेर धाइ हैं । परंति एक आइ है[7] ॥ ३० ॥
कुलाहलं हला हली । बलीन मैं चलाचली ।
सु ज़ोर पाइ आवते । थिरंति लागि घाव ते[8] ॥ ३१ ॥
न तीर[9] होनि पावते । सु चार ओर धावते ।
परंति हूह देय कै । मुरंति घाव खेय कै[10] ॥ ३२ ॥
बिलंद कोप धारिहीं । उचारि 'मारि मारि' ही ।
लगैं तुफंग तीर ही । गिरंति धीर वीर ही ॥ ३३ ॥
परे तुरंग सूरमा । मिलंति जाति धूरमा[11] ।
दिखंति ना अंधेर मैं । धवाइ जे दरेर मैं[12] ॥ ३४ ॥
गिरंति तांहि ऊपरे । बिना हते सु भू परे ।
दरंति पाइ संग ते । पलाइके तुरंग ते ॥ ३५ ॥
तुफंग के तडाक ह्वै । खतंग के सडाक ह्वै ।
मच्यो घमंड घोर ही । मरैं न तुंड मोरि ही ॥ ३६ ॥

---

१. किसी के । २. दो फांकें–दो हिस्से । ३. पीछे से । ४. वीर रस में रच कर । ५. ज़ोर के साथ । ६. योद्धा भी (घोड़ों के साथ) गिरने लगे । ७. एक ओर आकर पड़ते हैं । ८. घाव लगने पर अकड़ते अथवा जो सामने ठहरते उन्हें घाव लगते । ९. निकट। १०. घाव खाकर मुड़ते हैं । ११. मिट्टी में मिलते जाते है । १२. (घोड़ों के) दौड़ाने में दले जाते है ।

शूकति जाति सबेग सपंखन ज्यों चलि धावति तोप को गोरा ।
ओट बचै नहिं कोट उपाव त[1] लोटति भूम परै तनु घोरा ।
पान[2] न हालति, पान[3] न जाचति, तूरन प्रानिन देती है छोरा ।
जांघ कटै कि भुजा कटि जाति, फुटै सिर भाल कि दैं उर फेरा ॥ २६ ॥

छोरि तुफंग हजारनि को, गुलकां घन ओरनि[4] ज्यों बरखावैं ।
फेर बरूद उताइल डालति, को गज काढति ठोक उठावैं ।
पाइ दुगोरनि को गुर सूर पलीतनि को करि जोर मिलावैं ।
पावक डाभि[5] उठावति नाद तडाभड यौं इक बार चलावैं ॥ २८ ॥

नाद तुफंगन होति घनो नभ धूम महां पसर्यों द्रिशाटावै ।
मानहु श्याम घटा घन की गन गोरनि ओरन ज्यो बरखावैं ।
पावक होति बरूद भखे तडिता सम दीख महां चमकावैं ।
धूर ते पूरन होइ रह्यो पुरि, तूरन सूरनि हूर लिजावैं ॥ ३२ ॥

(बचित्र सिंह युद्ध वर्णन)

तबि बचित्रसिंह रिदै बिचार्यो इह अवसर अबि मेरा ।
हतौं मतंग अंग मैं बरछा करिकै ओज घनेरा । ३० ।
हय अरूढ़ करि ठांढो अंतर उदेसिंह के पासा ।
मादक चढयो मसत अति होवा सभि सों बाक प्रकाश । ३१ ।

चरबति ओठन लाल बिलोचनि फरकति मूंछ उठाई ।
भ्रिकुटी चढ़ी कुटिल मुख लाली शमश महा छवि छाई । ३५ ।
मनहुं क्रोध ते शेर सटा उठि भीखन दरशन होवा ।
तोमर धरि कै हाथ उभायो हाथी मसतक जोवा । ३६ ।
पग को बल रकाब पर करिकै उछल्यो आसन छोरा ।
सभि सरीर को ओज संभारि कै हय फांद्यो गज ओरा । ३७ ।
सैफ बचाइ चलाइ सु बरछा तवा पुलादी फोरा ।

१. करोड़ों यत्न करने पर भी । २. हाथ । ३. पानी । ४. जैसे बादल ओले (गडे) बरसा रहे हों । ५. आग लगाकर । ६.

बर्यो जाइ गज मसतक मैं जबि पुन कर जुग करि जोरा । ३८ ।
कर्यो धसावनि प्रविश्यो ऐसे उपमां कहौं बनाई ।
क्रौंच सैल महिं जिम शिव नंदन बरछी मारि धसाई । ३९ ।
बाशक किधों वेग फण दीरघ बिनता सुत के त्रासा ।
देखि रंध्र गिर बिखै प्रवेशा नंहि पुन बदन निकासा । ४० ।
मनहुं इंद्र करि क्रोध बिलंदै लीन रुद्र ते सूलं ।
गिर को हत्यो बधन के हित करि अस उपमा अनकूलं ॥ ४१ ॥

(रि. ४ : २६)

(गुरुजी की तोपों का वर्णन)

गुरूके प्रताप की दुलारन करन वारी,
किधौं गुरू मूरत की रच्छा रूप धारी है[१] ।
किधौं बिजै आपनो सरूप धारि ठांढी ढिग,
किधौं रूप कालका को दासन उधारी है ।
सिंहनि सहाइ हेतु देति है दिखाई सोइ,
किधौं म्रितु दुरजन की दारून सुधारी है[२] ।
हिंदु को धरम धरा धारिबे को,
धीर धरि श्री गुबिंद सिंह तोप उपमा बिचारी है[३] ॥ ४६ ॥
गाढे गढ ढाहिबे को, दीह दल दाहिबे को,
खालसा उमाहिबे को दुरजन बिहालका[४] ।
तुरकनि को तेज त्रिन संचै सम[५] बध्यो बहु,
तांके छार करिबे कहु मानहु जोति ज्वालका ।
मेघन के बीच बसे गाजि गाजि गाज[६] जोइ,
दूजो देह धारे जनु आई खलु घालका[७] ।
दास प्रतिपालिका, सु खालिक की खालिका[८] ।
सरूप मनो काल का, प्रगट भई कालका ॥ ४७ ॥

(रि. ६ : १७)

---

१. गुरु—मूरत की रक्षा ने ही रूप धार लिया है । २. दुष्ट (शत्रुओं की मृत्यु ही रूप धारण किये खड़ी है । ३. हिंदू धर्म को धरा पर रखने के लिए धैर्यवान गुरु गोबिंदसिंह की तोप की यह उपमा मैंने विचारी है । ४. बेहाल करने वाली, नाश करने वाली । ५. घास के ढेर की तरह । ६. बिजली। ७. मानो वही दूसरी देह धारण करके (शत्रुओं) दुष्टों का विनाश करने आई है । ८. करतार की रची हुई ।

(उपवन वर्णन)

चारूतरु फूल रहे छया अनकूल रहे, मूल द्रिढ झूल[1] रहे, नीके आलबाल रहे।
दीपति कदंब रहे बेल के अलंब रहे, मिले नित अंब रहे, रस मैं रसाल रहे।
चंपक चमक रहे, गंध मैं गमक रहे डार ते लमक[2] रहे छबि को उछाल रहे।
चारों ओर झाल रहे धार फूल माल रहे, दल चल चाल[3] रहे तुंग ह्वै बिसाल रहे।९।
मानो काम बागवान गुरूसनमान हेतु दल फल फूल ते बसंत बगरायो है।
सुंदर बिहंग रंग रंग के उतंग बैठि भौरि सम भौर भूर भोर ते भ्रमायो है।
कूजति अनेक जनु पूजति सुवाक कहि, धूजति हैं पंखनि अनंद उमगायो है।
मोरन की शोर ज़ोर कीरनि[4] की भीर गन पोतक कपोत सारकान ते सुहायो है।१०।

(गु. प्र. सू., (रा: १२ : १८)

(ऋतुवर्णन–ग्रीष्म)

पुनि ग्रीखम रितु कीनो जोरा। तपति भई अतिशै चहुं ओरा।
तपहि रिदा जिव मतसर धारी। तिउं तप गई भूमका सारी।४३।
बहिति जोर सों तपतु समीरा। जो तापहि नर नारी सरीरा।
जिउं खल उचरहि बचन कुढाली। रिदा तपाइ देति रिस नाली।४४।
मारतंड की चंड मरीचा। दुखी जीव लघु तालन बीचा।
जिउं जग भगति हीन है प्रानी। जनम मरन महिं नित दुखखानी।४५।
सूके जल करदम बिहरानी। जनु प्रेमी उर सीख सिखानी।
सहित धूर बहु भ्रमत बघूरे। जिउं मति भ्रमति बिना गुर पूरे।४६।
म्रिग त्रिशना को हेरहि नीरा। दौरति म्रिग नहिं पावहिं धीरा।
जिउं मन विशय सुखन हित धाई। त्रिपति न होति न थिरता पाई।४७।
पसु पंछी हेरहि तरु छाया। वैसहिं तपतहिं ते सुख पाया।
बहुत जगत दुख ते जग्यासी। जिउं मिल सति संगत सुखरासी।४८।
भावहि बहु सीतलता पानी। भाग जगे जिउं गुरु की बानी।
अस ग्रीखम महिं स्री जग साई। बिचरत लीला करति सुहाई।४९।

(गुरु नानक प्रकाश पू. अ. ११)

---

१. लिपटे हुए हैं–वेष्टित है। २. लटकना। ३. पत्ते हिल रहे हैं। ४. तोते।

(वसंत ऋतु)

चढ्यो चेत सभि को सुख देती । नंहि अति सीत न उशन तपेति ।
बिकसे कुसम अनेकनि रंग । अति शोभा सुंदर सरबंग । २६ ।
पात निपात पलास प्रकाशे । जित कित अरुरा बररा ही भासे ।
चहुं दिश वन की दिखीअति भूमि । जनु गन अगनी लाट अधूम । २७ ।
उपवन महिं गुलाब चटकीले । बिकसति बूटन साथ छबीले ।
कौन कौन तरु फूलनि केरी । कहीअहि जात रुचिरता हेरी । २८ ।
ब्रिद विहंगन बोलबि जनीयति । कानन रहि कानन मही सुनीयति । २९ ।
रुति बसंत जग बिदत छबीला । शांति ब्रित्ति सतिगुर की लीला । ३० ।

(गुः प्रः सुः रा. १ : २६)

(पावस ऋतु)

सतिगुर तहां बिराजति रहे । रुति बरखा के आनंद लहे ।
बिदते जलधर गगन मझारी । ज्यों तन धरहि संत उपकारी ॥१५॥
कल्लर खेत सकज थल बरखैं । देखि देखि करि जन गन हरखैं ।
जिम गुरु गिरा सुनहि सभि कोई । प्रेम बीज कहूं उतपति होई ॥१६॥
मधुर मधुर धुनि सुनि सुनि मोर । ठौर ठौर बोलति करि शोर ।
जथा कीरतन सुनि जग्यासी । बसहि रिदे पुन गाइ प्रकाशी ॥१७॥
दादर टेरति हैं चहूं ओर । जिम सिख पढहि गिरा गुर जोर ।
बहु जल पाइ मुदति भे मीन । जथा सिक्ख गुरु प्रेम प्रबीन ॥१८॥
जर्यो जवासा जर्यो न जल को । सुनि निंदक जसु गुरु विमल को ।
हरिआवलि सगरे जग होई । गुरु सिक्खी जिम सभि थल जोइ ॥१९॥
सरिता को प्रवाह बहु बाढा । जुग कंडनि[1] ते जल कहु काढा ।
जिम भगतनि कै प्रेम प्रवाहू । रस को लैवे बधहि उमाहू ॥ २० ॥
पावस पाइ बीज बहु उपजैं । जिम सिक्खी ते गुन गन निपजैं ।
सतिगुर सलिता के तटि जाइ । बैठि बिलोकहिं जल समुदाइ ॥ २१ ॥
बडे बेग ते बगहि[2] प्रवाहू । काशट बहे जाइ गन मांहू ।
नीर नवीन मलीन सु पीन । तरु जुति तट को ढाहनि कीनि ॥ २२ ॥

१. किनारों से । २. बहना ।

सहत अनेक बिकार अशेखू । हतहि ग्यान जिम राग रु द्वेखू ।
कबि कबि लागहि तहां दिवान । करहिं रबाबी शबद सु गानि ॥ २३ ॥

(रा. ६ : ४५)

पावस रितु जग महिं प्रगटाई । चहुं दिशि सघन घटा घिर आई ।
बरण बरण के जलधर बरखहिं । मिटी तपत जंतू जन हरखहिं ॥ ४२ ॥

नीर नवीन नदी महिं चलै । कूलनि को ढाहति जनु निगलै[२] ।
त्रिण काशट संचय बहु बहैं । जल जंतू उछलति सुख लहैं ॥ ४३ ॥
घन घोरन ते मोरन शोर । सुनीअति कीरतपुरि चहुं ओर ।
बिना धूल ते सैल बिसाले । खरे तरोवर फलति रसाले ॥ ४४ ॥
भांति भांति की शोभा होति । सतिगुरु हेरति अनंद उदोत ।
हरिआवल होई सभि रवनी[२] । इंदु बधू जुति देखति अवनी ॥ ४५ ॥

× × ×

तिह छिन चली पौरा पुरवाई । निकसे घन जिम गज समुदाई ।
घुमडी घटा घरीक महिं घनी[३] । घोर घोर घन चपला सनी ॥ २४ ॥
बड़ी बड़ी बूंदैं बहु परी । बरसन लग्यो अधिक भी झरी ।
जित कित नीर प्रवाह चलंता । ऊचे थल ते नम्रि ढरंता[४] ॥ २५ ॥
धाइ धाइ नर धामन बरे । बारी बहै बिलोकन करें ।
धन्न गुरू गुर धन्न बखानहिं । महां मूढ जो इनहु न मानहिं ॥ २६ ॥
दल मनिंद घन घने दिसावहिं । इक आवति बरखति इक जावहिं ॥ ३० ॥

(ऐ. १ : २७)

(यमुना के तट पर पांऊटे का वर्णन—वन वर्णन)

फले फल फूलनि सों, झुके झुप झूलनि सों गाढे तीन मूलनि सों खरे एकसार हैं ।
पातन निपात है, अनेक पात जात हैं दिपत बहु भांति हैं सु आरू ते अनार हैं ।
बात पोत तिंदक, सपतदल, सिंधक है, इंगुदी, उदालक, तिलक, देवदार हैं ।
बधे समूह डार हैं अधिक बिसतार हैं बहे सु बहु बारि है, बिसाल गुलज़ार है ॥ ४ ॥

(प्रभात)

भयो अरणोदय अरण चूड बोले रव,
खिरे अरविंद पर सारंग सु डोलहीं ।
प्राची पियरानी चारु चटिका चुचानी बानी,
चक्रवाक मिले बोल बोलिं कै कलोक ही ।
भाजे दूति चोर पुरि ग्रामनि को छोरि छोरि,
भानु कर दौरि गन संख मुखि बोलही ।
उडगन सन भयो तिमर निघन घन,
ग्यान जैसे मोह सैन हनै झकझोलिही ।

(गु. नाः प्रः पू. २२ : २९)

(यमुना नदी वर्णन)

सुता सपतासु की, नसय्या पाप रासि की,
दिवय्या मोख दास की लखे जु नेम जमना ।
एक बारि बारि छुए पावनता पावन कै,
पान ते शनान ते दुखति तिन जम ना ।
श्याम जल जलज बिलोचनि की श्याम पति,
चंचल, अछल जिन छल्यो काल जमना ।
जांके आन सम ना विघन गन शमना,
सदीव सिंध गमना सुहाइ शुभ जमना ॥ ११ ॥
केती दूर तीर तीर फिरे बर बीर धीर,
हेरति गंभीर नीर सीर शुभ चालते ।
कहूं बेग ज़ोर ते मरोरते सु भौरी परै,
कहूं फेन फोरते कहूंक सो उठालते ।
कतहूं उतंग श्याम रंग के तरंग ब्रिंद,
कतहूं मतंगे अंग संगनि उछालते ।
पाथर पखालते कहूंक तट डालते,
कितेक जल हालते झखादि जंतु जाल ते ॥ १२ ॥

(आखेट वर्णन)

गुरु लागे तहिं करनि अखेरे । सूकर ससे म्रिगनि घनेरे ।
सभि सों, कह्यो खोजीयहि शेर । इति उति फिरि करि लीजहि हेरि ॥ १८॥
इति उति ते गन तुपक चलाई । जाग्यो शेर लीनि अंगुराई ।
महां केहरी भीखन भारा । बड़ी बेल लांगुल बड धारा ॥ २० ॥
मुख पसार करि तबि जंभायो । गरज्यो भूर सभिनि सुनि पायो ।
बिखम स्थान झार के तरे । तहां बिलोक्यो भट सुधि करे ॥ २१ ॥
सुनि गुरु बली तहां चलि गए । केहरि भीखन देखति भए ।
बिखम थान सो खर्यो निहार्यो । हय ते उतरनि रिदै बिचार्यो । २२ ॥
नहीं तुफंग संग इस मारैं । खडग सिपर गहि समुख संहारैं ।
नहीं तुरंग चलावनि थान । कंटक जुति तरु खरे महान ॥ २३ ॥
दीरघ दाड़ैं दारुन तुंड । पग के नख तीखे सु प्रचंड ।
भीखन सटा उठाए टौर । देति त्रास जनु भख्यति दौरि ॥ २४ ॥
बडे पखारि गात पर परे । मानहु गिर पर अहि समसरे' ।
श्रोरिगत रंगी आंख मनो हैं । उदर बिसद जिह म्रिदुल घनो है ॥ २५ ॥
गुरु उतरि आगै हुइ खर । सिपर बाम कर दिढि तबि धरे ।
ललकार्यो गीदी क्यों खर्यो । कहि इम पाइ रोपिबो कर्यो ॥ २६ ॥
सुनति निकटि पिखि बडि भभकार्यो । खरे जु भट हय गन डर धार्यो ।
भाजे आपि आपि को गए । मुत्र पूरीखि[१] तजति को भए ॥ २७ ॥
एकहि बारि फांधि करि आयो । तुंड प्रचंड पसारति धायो ।
दूरि दूर थिरि पिखहिं तमाशा । केचित बाजि होति हैं पासा ॥ २८ ॥
निज बल अखिल करे मुख बाए[२] । चरन सनख जुग उरध उठाए ।
ऊपरि पर्यो आनि करि ऐसे । तरै दबाइ उठहिं नहिं जैसे ॥ २९ ॥
सिर उपरि जबि आवनि लागा । आड सिपर को रोकसि आगा ।
रह्यो ओज करि, अग्र न आवा । ढाल झंझोरनि बदन चलावा ॥ ३० ॥

६५१. टट्टी । २. मुंह खोल कर ।

तिह छिन गुरु शमशेर निकासी । तीखन भीखन चलि चपला सी ।
रुप्यो पाइ दिढ थंभ समाना । नहीं थान ते चले सुजाना ॥ ३१ ॥
कोप गुरूके मुख पर छायो । भ्रिकुटी नचति लाल हुइ आयो ।
फरकति अपर अस्न द्रिग भए । सिपर धकेला पूरब दए ॥ ३२ ॥
जुग पग मुख ढाले पर तीनि[१] । हटि पीछे तन ऊचो कीनि ।
दाहन कर को बल करि सारा । खडग पुलादी गुरू प्रहारा ॥ ३३ ॥
कट ते कटि करि दोधर पर्यो । कराचोल[२] धरनी महिं बर्यो ।
गेरि शेर शमशेर निकारी । रिस ते बहु बल संग प्रहारी ॥ ३४ ॥

(नगर वर्णन)

पटना पुरि बास बिसाल बसै सभि भांति बिलासती हैं नर नारी ।
धनवान महान अनेक ही मानव कंचन भूखरा हीरनि धारी ।
मुक्तागन हार सु कुंडल चारु, उदार बड़े भुज अंगद वारी ।
तन अंबर रीति अनेकनि के जिम अम्बर मैं उड हैं दुति भारी ॥ २३ ॥
वाहन हैं गज पालकी, सुन्दर मंदर अंदर वाहर सेता ।
धाम धुजा अभिराम बनी जनु पंख लगाई चहैं उड जेता ।
पौर बड़े जुग कौर सजे सभि ठौर सजैं धुनि आनंद देता ।
देख्यो सु जाई किते दिन मैं बड़ दूर लगौं बसिओ पुरि एता ॥ २४ ॥
बाग बिसाल खरे फल लागि दिबार बने बहु रंगनि के ॥ २५ ॥
बारी फिरे बर बूटन मैं, सबजी सबि जी हरखंति निहारी ।
कारी सु कोकलका कुहकावति, मोरन शोर सु भौर गुंजारी ॥ २६ ॥
जल की लीला अनिक विधि करहिं नारि नर चाइ ॥ २७ ॥

(वही, राः ११ : ५८)

(होली वर्णन)

बोलति कपोत[३] भ्रिंग[४] खंजन[५], कुलिंग[६] कल[७],
सारस[८] कुरंग[९] नाना रंग के बिहंग हैं ।
कानन उलंघि गए नगर उमंग पिखि,
नागर और नागरी अनंद बहु रंग हैं ।

१. तीनों । २. खडग । ३. कबूतर । ४. भौंरा । ५. खंजन पक्षी, भमेरा । ६. जल के निकट रहने वाला एक पक्षी; । ७. सुंदर । ८. एक जलपक्षी । ९. हिरन ।

गावति बसंत मिल नाचति अनंत धर,
राइ रंक तजी शंक फिरति निसंग हैं ।
हाथ सों बजाई तारी मुख ते सुनाई गारी,
डारैं पिचकारी भरि रंगति सुरंग हैं ॥ ११ ॥

(गुरु गोबिंद सिंह का होली वर्णन)

रंग पतंग सुरंग कियो बहु, किंसक फूलनि पीत निकारा ।
डारि महां खुशबोइ मझार, परै जबि चीर, उठै महिकारा ।
सिक्ख्यनि कीनि महां धन दे करि आपने आपने थान सुधारा ।
आप गुरू अबिके अनुरागति खेलहिंगे सुभ फाग उदारा ॥ ३ ॥
ताल, रबाब, पखावज के बहु बादति बाजति हैं धुनि भारी ।
गावति रागनि रागनी को जन आइ खरे निज मूरत धारी ।
ज्यों सुरलोक बिखै सुर मोदति आपस मैं मिलि कै हितकारी ।
त्यों सिख संगति पंकति को करि, हेरि गुरु हरखैं उर भारी ॥ ५ ॥
फेटन को भरिकै सभि आप अंबीर गुलाल को डारति हैं ।
हाथनि मैं पिचकारी भरे बहु ऊपर गेर न्हलावति हैं[1] ।
पीत भए बहु अंबर लाल बिसाल सु बेग ते चालति हैं ।
एक निहारति[2] है इक भालति एक संभाल उतालति हैं ॥ ७ ॥

श्री गुबिंदसिंह करि होरी को बिलद,
साज हाथ पिचकारी सभिहूनं भरि लीनिओ ।
भले भले सिख आइ धारति भगति भाई,
प्रिथम गुरूके पाइ बंदना को कीनिओ ।
उड़्यो एक बार ही गुलाल लाल घटा मानो ।
रंगनि की बूंद बरखति इम चीनिओ ।
रंग दारु अंबर कै रंगदार अंबर कै,
मूठ भरि मारैं, रंग डारति नवीनिओ ॥ ८ ॥

१. मानो स्नान करवा देते है । २. देखते है ।

ब्रिंदु गुलाल अंबीर उडै, गहि केसर की गिरवै पिचकारी ।
संगति श्री गुर पै अलता कर को भरि डारति पूरब वारी ।
आपस मैं पुनं गेरति हैं पट लाल भए सभि के इकसारी ।
धन्न गुरूसिख कीनि निहाल, क्रिपाल बिसाल, सुनाइ उचारी ॥ ९ ॥

बादर गुलाल के करति जाति चले गुर,
संगति मैं धूंम पई फाग बड़े खेलते ।
घेरि घेरि बदन पै गेरि गेरि फेर फेर,
हेरि हेरि हरखति नेरे हुई मेलते ।
उठै महिकार गंध पाई पौन मंद मंद,
सीतल बहित सिख अंगन मैं झेलते ।
निकसे आनंदपुर मानति अनंद ब्रिंद,
तीर सतुद्रव के गए हैं रेल पेलते ॥ १० ॥

कीने सिख संगति दुपास खरे आपस मैं,
डारि डारि मूठ पिचकारी सों भिरति हैं ।
बदन शमश अरु केसनि पै गयो जम,
रंग को फुहार फेर ऊपर ढरति हैं ।
होति न चिनारी, इक सारी सभि होइ गए,
रोर को मचावैं दौर, ठौर न टरति हैं ।
बिसद बरन के बसन सो अरंन भए,
मानो जंग जीत कै बिलासनि करति हैं ॥ ११ ॥

श्री कलगीधर संगति मैं सुर ब्रिंद ज्यों इंद्र बिराजति हैं ।
जादव मैं जिम श्री घनश्याम महान ही कौतक साजति हैं ।
कै रघुबीर नरेशनि मैं मिलि मोद महां उपराजति हैं ।
कै भगति सुर संपदर के जुति श्री ब्रह्म ग्यान सों छाजति हैं ॥ १२ ॥

(नृत्य वर्णन)

चं चटपट नागरी लौति भवारी छम छमकारी छवि धारिनी ।
सं सटपट बैठ ते भुजा अमैठति, ताल ईबैठति मन हारिनी ॥
तं तटपट डोली द्रुम नवोली मति अलबेली सुठ अंगा ॥
ठं ठुमठुम ठुमकी झुक–झुक झुमकी ठुम ठुम ठुमकी ॥ ४८ ॥
तं तट सुठ तटकी चिकनाति चटकी बेनी सटकी विसिमरतं ।
बं विथ जिउं नटकी शास्त पट की करवर मटकी सिर धरतं ।

(गु: ना: प्र:)

(कुछ सूक्तियां)

गुन विहीन पूजा कहां, विद्या बिन माना ।
जीत कहां बिन सूरता मन थित बिन ध्याना ।
बिन संतोख उर सुख कहां, तप बिना न राजू ।
ग्यान कहां बिन सतिगुरु शोभा बिन लाजू ।
बिन जहाज तरिबो कहां सागर असगाहू ।
भगति कहां बिन प्रेम के पग पंकज माहू ।
कविता बिन कीरति कहां, जसु बिना न दाना ।
मुकति कहां बिन प्रभु के सुर बिना न याना ॥ ९ ॥

गुरा महिं बडो बडो मो जानो लघु गुरा महि तहि लघु ही हेरो ।
गज दीरघ लघु शेर हेरीयति, म्रिगपति नाम अधिक गुरा जानि ।

एक ग्राम हित देश दुखावै । तउ तिह त्यागनि ही बनि आवै ।
इक कुल हेत ग्राम दुख पाइ । तौ तिस कुल को त्याग कराइ ॥ ५ ॥

भीर परै रख्यक बने भ्राता सुत कै मीत ।
तिम दाता दुरभिच्छ महिं तीनहुं ले जसु नीत ॥ ३१ ॥

भ्रातनि पर उपकार जो जिम धन संच्यो होति ।
परै भीर दारिद जबै सभि संकट को खोति ॥ ३२ ॥

द्वै न्रिप हुई इक देश महिं क्यों मचहि न रौरा ।
परै अंधेरा जगत महिं रबि ससि इक ठौरा ।
कानन महिं इक केहरी सुनि कानन नादा ।
करहि निकासनि दूसरो सहि सकै न बादा ॥ ॥

PRINTED AT : DAWN COMPUPRINTERS, AMRITSAR